UNIVERSAL
LIBRARY
OU_178724
UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—24—4-4-69—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H87 A61M Accession No. P.G. H2801

Author अन्नपूर्णानन्द

Title मन-मयूर 1951

This book should be returned on or before the date last marked below.

मन-मयूर

लेखक द्वारा लिखी

मेरी हजामत

मगन रहु चोला

महाकवि चच्चा

मङ्गलमोद

मन-मयूर

लेखक द्वारा प्रस्तुत

प० बिलवासी मिश्र

मन-मयूर

(सचित्र)

लेखक

अन्नपूर्णानन्द

प्रकाशक

रामनारायण लाल

प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता

इलाहाबाद

१९५१

प्रकाशक
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
रामनारायण लाल
प्रयाग

प्रथम संस्करण ४०००

मूल्य ४)

मुद्रक
रमज़ान अली शाह
नेशनल प्रेस
प्रयाग

अपनी दोनों प्यारी बच्चियों

को

इन्दुकला और इन्दुबाला

को

जो अभी हालमें गत हो गयी हैं

और

जिन्होंने मिल कर इस पुस्तककी

पाण्डुलिपि तैयार की थी

और

जिन्होंने मेरे ऐसे सुस्त आदमीको

इसके लिखनेमें

भरपूर सहायता दी थी

निवेदन

——बाबा तुलसीदासमें 'सियाबर कुबरी टेकत जात' काशी (औरंगाबाद) के रहने वाले पं० लक्ष्मी नारायण दुबेकी रचना है । मरे भी ६०-७० वर्ष हुए ।

——धरम-धोंधों एक सच्ची घटनाके आधारपर लिखा गया है ।

——सम्भव है पुस्तकमें अशुद्धियाँ मिलें । अगर मिलें तो उनके लिए क्षमा किया जाऊँ ।

——लेखक

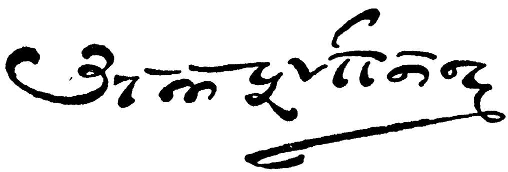

मन-मयूर

विषय | पृष्ठ

विषय	पृष्ठ
१—अपना परिचय	१
२—बाबा तुलसीदास	१७
३—जीट बहादुर	२६
४—कबिला-खण्ड	५६
५—अहमकोऽहम्	७१
६—दिग्गज द्वय	८७
७—धरम-धोंधों	६७
८—नाम-मंजरी	११७
९—शृंगार रस	१२७
१०—शैली-सर्वस्व	१३६
११—तीन पुराने	१४६
१२—आगम-सोची	१६१
१३—प्रकाशक-पञ्चदशी	१७३
१४—रईसोपाख्यान	१८७
१५—टेढ़ी माँग	२०७

अपना परिचय

आरम्भसे ही आरम्भ करता हूँ।

मेरी खोपड़ी मेरे शरीरका वह उन्नत भाग है जो अकसर चौखटोंसे भिड़ा करता है।

इसी शिखरपर एक शिखा है जिसकी चकबंदी गायके खुरको परकारसे नाप कर की गयी थी।

[एक

लोगोंका कहना है कि मेरी इस शिखासे मूर्खता टपकती है। लेकिन मेरा कहना है कि मूर्खता भी मूर्खता करती है जो टपकनेके इतने स्थान छोड़ चुटियासे टपकती है।

कुछ साल पहले मैं कुल डेढ़ हड्डीका एक दमटुट और मरजीवा आदमी था। पूरा व्याधिमंदिरम् था। हूल और शूलसे चूल-चूल ढीला पड़ गया था। माजून और मात्राके बलपर शरीर-यात्रा हो रही थी।

उन्हीं दिनोंकी बात है कि एक 'रिक्ता' का विज्ञापन देख कर मैंने अरज़ी भेजी और इंटरव्यूके लिए बुला लिया गया। पर दफ़्तरका बड़ा बाबू मुझे देखतेही चीख़ पड़ा—'अजी तुम्हारा चेहरा तो बिलकुल चमरखसा है।'

यह एक रही। मैं कुड़बुड़ाया तो, पर बोला नहीं। उसने फिर कहा—'और तुम्हारी सूरत भी क्या ख़ूब चमरपिलईसी है!'

अब अति हो रही थी। मैं कुछ हूँ-टूँ करता पर वह बोलता गया--'नहीं, तुम मेरे मसरफ़के नहीं हो। तुम्हारी शकल कहती है कि तुम अनेक लतों और इल्लतों के शिकार हो।'

'जी हाँ, हूँ तो।'--मैंने कुढ़कर कहा--'गाँजा पीता हूँ, गंजीफ़ा खेलता हूँ।'

'नहीं, कुश्ता खाया करो, कुश्ती लड़ा करो।'--उसने तड़ाकसे उत्तर दिया। था वह एक नम्बरका चटबोल आदमी।

ताव-पेच खाता मैं उस दिन घर लौटा। उसकी चमरपिलईवाली बात मुझे लग गयी थी। पाठा बननेकी धुन मनमें हवा बाँध रही थी। यह तो मेरा देखा हुआ था कि मिक्श्चरसे शरीरका शनिश्चर नहीं जाता, और न चिरायतासे चिरायुता मिलती है; काँटेसे काँटा तो निकल जाता है लेकिन अरिष्टसे अरिष्ट नहीं

निकलता। निदान मैंने उसी दिनसे डँड़ पेलना शुरू कर दिया। अब मैं चीरे चार बघारे पाँच हूँ।

पर मेरी पढ़ाई-लिखाई विशेष लिखने-पढ़ने की वस्तु नहीं है। बड़ोंने, बूढ़ोंने, लाख सर मारा लेकिन मेरी शिक्षा-दीक्षा अस्ति और नास्तिके बीचकी क्षीण रेखा सदृश ही रह गयी।

एक तरहसे अच्छा ही हुआ। अधिक पढ़-लिखकर फ़ाज़िल होता तो जा दिल्लीमें क़ाज़ी हो जाता। यों अपनेको और किसी अर्थका न पा कर मैं लेखक हो गया।

और लेखक अपनी लेखनीसे अपने कान खुजलाते हैं, मैं अपनी लेखनीसे औरोंके दिल गुदगदाता हूँ।

पर इसी लेखनी से, जवान था तो मैंने पापड़ बेला; अधेड़ हूँ तो चौका लगा रहा हूँ; वृद्ध हूँगा तो शायद

रहीमकी तरह भाड़ भी झोकूँ। सबसे अच्छा बचपन था जब लेखनीसे बस जाँघियोंमें इज़ारबंद डालना जानता था।

एक बार बौखला कर मैंने अपनी इसी लेखनीसे कितने गुरुओंको गोरू बना दिया था। लोग तब खड़बड़ा

कर कहने लगे थे कि साहित्य गगनमें यह झाड़ूतारा कहाँसे उदय हुआ।

यों तो मैं सभी अलंकारोंको अपनी लेखनीकी पकड़ में समेट लेता हूँ पर उपमा और उत्प्रेक्षाका मुझे पूरा प्रेत ही समझिये। ऐसे-जैसेका मैं ऐसा अभ्यासी हूँ जैसे माछेर-झोलके बङ्गवासी। मेरे लिए कोई चीज़ सुंदर है तो काश्मीर की झीलकी तरह, अनिवार्य्य है तो मुक़दमेमें वकीलकी तरह, प्रिय है तो लड़कोंको तातीलकी तरह, आवश्यक है तो चमरौधेमें कीलकी तरह।

लेखकोंमें मैं बूढ़े विधाता को अपना आदर्श मानता हूँ जो एक बार ग़लत-सही जैसा कुछ लिख मारता है उसके संशोधन-परिवर्त्तनका फिर नाम नहीं लेता।

अपनी क़लमका मैं ऐसा कलन्दर हूँ कि उसे जैसे चाहूँ नचाऊँ; पर वह खिलखिलाती अगर है तो दूसरों की खिल्ली उड़ानेमें। दूसरोंके गुण देखनेमें मैं अंधा हूँ, दूसरोंके गुण गानेमें वह गूँगी है।

पर मैं ख़बरदार रहता हूँ कि ख़ुद मेरी खिल्ली कोई न उड़ाये। यही कारण है कि साहित्यके क्षेत्रमें एक समालोचकोंको छोड़ मेरी हर तरहके लोगोंसे पटरी बैठ जाती है। मेरी समझमें यह आज तक न आया कि साहित्य-उपवनमें इन निमकौड़ी बटोरनेवालोंकी आख़िर क्या आवश्यकता थी। मेरी पक्की धारणा है कि नितान्त पँचकल्यानी लोग ही साहित्य-सेवाके नामपर यह पुलिस-वृत्ति अख़्तियार करते होंगे।

मैं अपने हृदयके पेंदेसे उन बखेड़ियोंकी भर्त्सना करूँगा जो हिन्दीमें व्याकरण बनाते चले जा रहे हैं। आप अगर चाहते हैं कि साहित्य खुल कर साँस ले तो व्याकरण-रूपी बोझा-नागकी जकड़-बन्दीसे उसे बचाइये। आज व्याकरण बनाइयेगा, कल जेल बनाइयेगा, परसों व्याकरण न माननेवालोंको उन्हीं जेलोंमें ठूस दीजियेगा। व्याकरणका ज्ञान, सच पूछिये तो, केवल वहीं तक अपेक्षित है जहाँ तक हम संतरीको संतराका स्त्रीलिंग

न समझें, रबड़को रबड़ीका पुल्लिंग न समझें, और भावजको अगर भाभी पुकारते हों तो बड़े भाईको भाभा न पुकारें।

मेरी इन बातोंको पढ़ कर मुझे कोई बौड़म पुकारे तो मैं उसे क्षमा कर दूँगा, जैसे सूर्य्य उन लोगोंको क्षमा कर देता है जो उसे पतंग पुकारते हैं।

मेरा घरेलू जीवन इस अर्थमें बड़ा सुखमय है कि घरकी मालकिन महोदया मुझे काठ-कबाड़ समझ कर अधिक छेड़ती नहीं। हाँ, यह ज़रूर है कि मेरा पति-परमेश्वर-पन वे बहुत पनपने नहीं देतीं।

पर इसका यह अर्थ नहीं कि हम-दोकी दुनियामें कहीं कोई दरार है। जीवनकी एकरसताको दूर करने के लिए कभी कोई झड़प हो जाय---वह दूसरी बात है। यों हम दोनों, गणित को व्यर्थ करते हुए, १+१=१ ही हैं।

अपने दीर्घ दाम्पत्यके दौरानमें सदा गाँठ बाँध रखनेकी जो बात मैंने सीखी वह यह है कि यदि आप चाहते हों कि आपकी स्त्री ज्वालामुखी न बने तो उसे आप फूलझड़ी बननेसे न रोकें।

मेरे दूषणोंका दफ़्तर खोल कर जब वे मेरे ऊपर स्फुलिंग बरसाने लगती हैं तब मैं खीस काढ़ कर खगोल निहारने लगता हूँ।

मैं पूछता हूँ कि उन्हींकी तरह और जो लोग मेरी चिन्दी निकालते हैं वे यह क्यों नहीं सोचते कि मेरे दो ही तो हाथ हैं, उनसे मैं क्या-क्या करूँ। एकसे करम ठोंकता हूँ, दूसरेसे मुँहकी मक्खी उड़ाता हूँ। बाकी काम हमारे चतुर्भुजी भगवान हमारे लिए करें न। उन्हें हमने चार हाथ दे किस लिए रक्खे हैं।

पर यह सच नहीं है कि मैं कुछ करता नहीं। राष्ट्र-सेवा मैं बखूबी कर लेता हूँ। अभी कल ही मैंने कई

प्रकारसे राष्ट्र-सेवा की। राष्ट्रीयताके कई उपासकोंकी मन-ही-मन उपासना की, राष्ट्रीयताके कई विरोधियोंका मन-ही-मन विरोध किया, और राष्ट्र नामक पत्रिकामें राष्ट्रीयतापर एक लेख पढ़ता-पढ़ता सो गया।

राष्ट्र-सेवाके अनेक रूप हो सकते हैं। मैं तो बैठकमें राष्ट्रनायकोंके चित्र लटका लेना भी कम राष्ट्र-सेवा नहीं मानता। एक बार एक बड़े नेताके साथ एक ही शतरंजीपर बैठनेका एक संयोग प्राप्त हुआ। उसके कई दिन बाद तक मुझे अपने मस्तकके चारो ओर एक तेजोमण्डलका आभास मिलता रहा। बिना राष्ट्र-सेवाकी भावनाके यह कहाँ सम्भव था!

पुरुष पुरातनकी वधूने मेरी डचोढ़ी कभी पार नहीं की। इस लिए अपनी शानको मैं पुरवटके धानसे अधिक नहीं समझता। कोई कान पकड़कर थोड़ी देरके लिए हाथी-घोड़ा-जीनपर बिठा भी दे तो मैं अपने करवा और कोपीनको न भूलूँ।

भूख अच्छी लगती है, माँड़ भी बसौंधीका मज़ा दे जाता है। आज खाता हूँ, कलको झंखता नहीं। चरबी इतनी चढ़ती नहीं कि सुबाला और दुशालाका प्रयोग किसी जाड़ेमें आज़मानेकी सोचूँ। बाज़ार यहाँ पहलेका लुट चुका है, रमैयाकी दुलहिन अब क्या लूटेगी।

नींद भी अच्छी आती है; कुकुर-झपकी नहीं बल्कि घोड़ा-बेच। फ़र्शपर एक टुकड़ा टाट हो तो छपर-खटकी बाट न देखूँगा। लोगोंका कहना है कि नींदमें जो मैं संज्ञाहीन होता हूँ सो उसकी संज्ञा है कुम्भकर्णका।

भोजनके रसोंमें मुझे मधुर अतीव प्रिय है। केवल मिष्टान्नपर मैं महीनों आनन्दपूर्वक टेर ले जाऊँ। अवश्य ही यह उत्कट संस्कार पूर्वजन्मों में बारम्बार ब्राह्मणका चोला पानेसे प्राप्त हुआ होगा। जो हो, मीठा विषयक मेरा प्रेम कमज़ोरीकी हदको भी पार कर गया है। एक तबलीग़ी मुल्लाने मुझे मुसल्लम-ईमान

बनानेके लिए अनेक प्रलोभनोंमें एक यह भी प्रलोभन दिया था कि मरोगे तो तुम्हें शक्कर के बोरेमें दफ़नाऊँगा ।

रहनी अपनी रहस्योंसे रहित और असाधारण रूपसे साधारण है । अपनेमें कोई विशेषता नहीं है, यही अपनी विशेषता है । जैसे बन्दरको आदी है, भैंसको बीन है, खरको आखर है, वैसे ही अपने लिए साहित्य, सङ्गीत और कला है ।

पर फुटकल बातोंका ज्ञान मेरा बहुत है । उसमें कोई डाँड़ी नहीं मार सकता । मैं जानता हूँ कि लाल स्याही और नमकीन मिठाई कहना ग़लत है । मैं जानता हूँ कि बालूसे तेल न निकले पर मिट्टीका तेल बराबर निकलता है । मैं जानता हूँ कि तसली धातकी होती है और तसल्ली बातकी । मैं जानता हूँ कि मैं दिया जलाऊँगा, लम्प भी जलाऊँगा, पर दोनों मिला कर दम्प नहीं जलाऊँगा । मैं जानता हूँ कि मेरे पुरखोंने किसी

पेशवाको पेशराज पुकारा होता तो क्या होता, और मैं किसी मल्लको मल्लू पुकारूँगा तो क्या होगा।

दुनियादारीमें, दुनियादारीकी दुनियामें, मैं काफ़ी रम चुका हूँ। सहस्रों बातें मैंने देखी हैं, सुनी हैं, समझी हैं, और 'मनोनोट' की हैं। अनुभवकी आँचपर मैं पाकठ हो चुका हूँ; घाघ और घोंघाकी, संत और चंटकी पहिचान कर लेता हूँ। साँटीसे काम नहीं चलता तो सोंटा निकालता हूँ, बाँड़ीसे काम नहीं चलता तो बेंवड़ा उठाता हूँ। व्यवहारकी शिक्षा मुझे देना साँभरके इलाकेमें नमक भेजना है।

अद्धा पेटमें हो और अधेली टेंटमें हो तो राजाधि-राजोंको भी अपने पैरोंका धोवन समझूँ। कोई रघुवंशी, सोमवंशी, यदुवंशी रहा हो पर मैं गोवंशी हूँ। मेरा आदर्श वह संतोष है जो किसी बैलको पूरा भूसा पाने पर प्राप्त होता है।

एक बार एक दुर्घटना हुई। किसी निराहार व्रतके पारणके अवसरपर, ठाकुरजीको भोग लगाते समय, मंत्रोच्चारणके लिए मैंने मुँह जो खोला तो नैवेद्यकी थालीमें ही मेरी राल चू पड़ी। तबसे मैं व्रत-उपवास कभी नहीं करता।

यों अपने धर्म्म-कर्म्मसे मैं चौकस रहता हूँ, पर दान-दक्षिणाकी विशेष समाई अपनी थोड़ी कमाईमें है नहीं। हाँ, एक काम ज़रूर करता हूँ, अपने कर्ज़े सदैव कृष्णार्पण कर दिया करता हूँ।

और किसीने भगवानको न देखा हो, पर मैंने देखा है। अन्तिम बार जब मेरा उसका साक्षात हुआ था वह मेरी आशाओं और अभिलाषाओंकी समाधिपर सुखासन लगाकर बैठा हुआ था। मुझे देखकर उसके सुचिक्कण भालस्थलपर जो सिलवटें प्रकट हुईं वे ऐसी कान्त और कमनीय थीं जैसे रच-पचकर लगाया हुआ खौर। आमर्षसे आयत और आरक्त उसके विलोचन

यों खिल रहे थे जैसे खिले हुए अरुणारविन्दके सुन्दर सुरङ्ग दल।

उसके एक हाथकी तर्जनी हेम-दण्डिकासी मेरी ओर विचलित हो रही थी। कंज-कोशसी बद्ध, दूसरे हाथकी मुष्टिका मेरी ही दिशामें भरपूर तनी हुई थी। तीसरा हाथ महामनोहारी अर्द्धचन्द्र मुद्रामें मेरे नटुवेकी ओर उठा हुआ था। चौथेमें तड़ित-प्रभायुक्त वह दुरमुस शोभायमान था जिससे कई बार कूट-पीटकर वह मुझे मटियामसान कर चुका है।

उसके सब हाथ इस प्रकार फँसे देख मुझे प्रसन्नता हुई कि इस बार भी वह, सदाकी तरह, झट अपने कानोंमें उँगली तो नहीं डाल सकेगा, और मेरी छोटीसी प्रार्थना अब उनमें पड़ तो रहेगी। फिर मानना न मानना उसकी मरज़ी।

अतः मैंने, तुरन्त बद्धांजलि होकर, महाकवि चच्चा के शब्दों में कह डाला—

है जलपान समान
तुम्हैं हलाहलपान प्रभु !
किन्तु चचा वरदान
चाहत भोजन रुचिर चिर ।।
सपथ चचाकी साँच
निहचै तारहु नाथ मोहिं ।
पै लंघनकी आँच
भव-बंधन जिन जारियो ।।

बाबा तुलसीदास

हालकी बात है। मैं सुन कर दंग रह गया। सड़कपर कोई अलापता हुआ चला जा रहा था—

मन-ही-मनमें मन हो मुँहमें भरके सुरती-चूना।
राम भजे जा तुलसी कह गये राम बिना सब सूना।।

कैसी अद्भुत व्यावहारिकता है। बात पारलौकिक लेकिन लोक-सामान्य भाव-भूमि पर। उनकी गरिमाका यही गुर है।

[सत्रह

नीति और निर्देशकी बातें तो जैसे अनायास ही उनके मुखसे निर्गत होती रहती थीं ; बुद्धिसे बोझी हुई, सूझकी सुलझी हुई, अनुभवमें सीझी हुई—और हृदयमें खुप-से खुभ जानेवाली।

मैं यही सब सोच रहा था कि पड़ोससे कोई छेड़ उठा—

तुलसी दुनिया समझी-बूझी निसि-दिन साँझ-सबेरेकी।
काम परेपै अहो पधारो काम सरे धत्त रेको ॥

इसका अर्थ यही तो हुआ कि वे सन्त होते हुए भी सांसारिकताकी नस-नस पहचानते थे, मानवीय प्रकृतिकी किल्ली-किल्ली से वाक़िफ़ थे। तभी तो जन-मनपर उन्होंने ऐसा जादू डाला कि लोग आज तक सिर धुन रहे हैं।

महाकवियों में जहाँ वे सौ में एक थे वहीं अकेले सौ भी थे। उन्होंने धार बन कर धराकी प्यास बुझायी, बौछार बनकर वे बिखरे नहीं। उनके समान वही थे,

उनसे महान वही थे, उनका पटतर देना अपना मुँह पीटना है।

लोकप्रियता उन्होंने यद्यपि ऐसी अलौकिक प्राप्तकी है कि लोकोक्तियोंके रूपमें लोकपर छागये हैं; तथापि यह कहना ग़ैर-सही होगा कि समाजके सभी अङ्गोपर, सभी अंशोंपर, उनका समान अधिकार है। उदाहरणके लिए स्त्रियोंको वे फूटी आँख नहीं भाते; और इसके लिए स्त्रियोंको दोष भी कैसे दिया जाय। एक स्त्रीके ही दिये-हुए गुरु-मंत्रकी बदौलत वे जङ्गलकी घाससे तुलसीदास हो गये, पर उसी स्त्रीकी माताओं और बहनोंको उन्होंने माँ-बहनकी गाली तो नहीं दी, शेष सभी कुछ कह डाला। अब उनके भक्त लाख सफ़ाई देते रहें पर वह सब कोयलेको धोकर खरिया बनाने जैसा ही होगा।

स्त्रियोंके अतिरिक्त समाजका एक और वर्ग है जो मन-ही-मन तुलसीदाससे सदा चिढ़ता आया है। यह

वर्ग है छोटे भाइयोंका, लघु भ्राताओंका। बड़े भाइयोंके प्रति भक्ति-भावका, नेम-प्रेमका, सेवा-टहल-बन्दगीका जो आदर्श तुलसीदासजीने सँजोया उसे उन्होंने इतने ऊँचे पर जा रक्खा कि छोटे भाई उसे उचक कर क्या, उड़ कर भी नहीं छू पाते। उनका कहना है कि तुलसीदासने यह आदर्श इसी लिए गढ़ा कि जो उसपर चलनेकी चेष्टा करें वे मुँहके बल गिरें; जो न चलें वे कर्तव्य-च्युतिके दोषी हो कर हेय बनें। छोटे भाइयोंकी दृष्टिमें इस आदर्शका निर्वाह तभी सम्भव है जब बड़े भाई साक्षात ब्रह्मके अवतार हों और वे स्वयम् सब कुछ सहनेवाले भू-भार-वाही भगवान शेषके।

जैसे स्त्रियोंके प्रति वैसे ही छोटे भाइयोंके प्रति भी तुलसीदासके मनमें किंचित दुर्भाव अवश्य था। प्रमाणके लिए दूर नहीं जाना पड़ेगा। उनके भजन-रामायणमें इस भावका आभास लक्ष्मणने दिया है। मानसमें तो इतना ही लिखा है कि भरत और शत्रुघ्नको चित्रकूट

पहुँचते देख लक्ष्मणको बेतरह ताव आया और वे मरने-मारनेपर उतारू हो गये । पर उस अवसरपर उनके मुँहसे जो फूल झरे वे भजन-रामायणमें ही मिलेंगे। यह भूल कर कि वे खुद भी छोटे भाई हैं लक्ष्मणने रामसे यों कहा—

प्रभुजी ! या जग भाई छोटे ।
ताल ठोंकि करैं राम-रमैया बोलत मुँह खरबोटे ।।
नाना-नालाइकी-निकेतन नौघरघटई घेंटे ।
बसि कुटिया बगरैं अस कटुता बखरैं जस परकोटे ।।
नेह - निबाह - निकंदनकारी नाहकमें मनमोटे ।
तुलसिदास अनुभव अनुमोदित अनुज सदाके खोटे ।।

अब देखना यह है कि इस पदमें तुलसीदासने अपने जिस अनुभवका इतना स्पष्ट संकेत दिया है वह क्या था । यह बात अति काल तक विद्वानोंके खोद-बिनोद और टोहाटाईकी सामग्री बनी रही पर इसका उद्घाटन अन्तमें मेरे हाथों लिखा था।

मैं विद्वानोंकी तरह घर बैठे इतिहास नहीं उधेड़ता रहा। मैं उन तमाम जगहोंमें घूमता फिरा जहाँ-जहाँ तुलसीदासजी जन्म लेते फिरे थे। बहुत बातें तो इस प्रकार अवगत हो गयीं; और बाकी प्लैंचेटपर उस प्रसिद्ध प्रेतने बतायीं जिसने, जैसा सर्व-विदित है, एक अवसरपर गोसाईंजीके साथ बड़ा सलूक किया था। अतएव अब मैं बता सकनेकी स्थितिमें हूँ कि उनका वह अनुभव क्या था, कैसा था और कबका था।

संसार जानता है कि तुलसीदास और नन्ददास भाई भाई थे, बड़े और छोटे, कलां और ख़ुर्द, अग्रज और अनुज। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि दोनोंमें, दोनों भाइयोंमें, जैसा होना चाहिये और होता ही है, काफ़ी दाँता-किटकिट हुई थी। मालमतासे दोनों खुक्ख थे पर कुछ छप्पर-छानी और झाड़ू-पीढ़ेका बल पड़ रहा था। तुलसीदास ननुनच कर रहे थे पर नन्ददास हाथ धो कर पीछे पड़े थे।

एक दिन नन्ददास ने कहा—'भैया, आप सीधे न मानेंगे तो मैं आपके इष्टसे आपकी खटपट करा दूँगा।

तुलसीदासने इसपर बिगड़ कर उत्तर दिया—'अबे चल, बड़ा आया है उनसे मेरी खटपट कराने।'

पर नन्ददास अपने वादेके पक्के थे, और फ़तूरिया ऐसे कि एक बार केवल भ्रमरकी तरह भनभना कर उन्होंने भगवानको भरमा लिया था। इस अवसरपर उन्होंने यह किया कि तुलसीदासके नामसे एक कविता लिख डाली और लिख कर उसे तुलसीदासजीकी कुटियाके पास वाले हनूमान-मन्दिरमें जा रक्खा।

उस रात तुलसीदासको अच्छी नींद नहीं आयी, थोड़ी आयी भी तो सपनोंमें डुबकी लेने लगे। देखते क्या हैं कि हनूमानजी उनकी गरदनमें अपनी दुम लपेटे

उनकी छातीपर चौचक बैठे हैं । तुलसीदासने सहम कर पूछा—यह क्या ?

हनूमानने भी उत्तरमें उन्हें वह कविता दिखा कर पूछा—यह क्या ?

तुलसीदासजीने बड़े ग़ौरसे वह कविता पढ़ी । लिखा था—

श्री अंगना में खेलत चारो भैया ।
रावन कुम्भकरन अहिरावन और बिभीखन गैया ।।
आइ जलधि तटसे पुलस्त्य मुनि इनकी लेत बलैया ।
तुलसीदास सब इनहिँ सुमिरि भवसागर पार जवैया ।।

इसे पढ़ते ही तुलसीदासजी समझ गये कि हो-न-हो यह नन्दुलवाकी, याने नन्ददासकी, शरारत है। पर सब तो सब, हनूमानजीने कैसे समझा कि तुलसीदास रामको तज रावणको भजेगा। और आ कर कुछ पूछना न जाँचना, चढ़ बैठे छातीपर। तुलसीदासकी छाती न हुई लंकाकी कोई बुर्जी हुई, चढ़ कर हुमचने लगे।

तुलसीदासने बात आगे बढ़ा दी, याने भगवान रामचन्द्रसे इसकी शिकायत कर दी। गोसाईंजीने सोचा था कि हनूमानको भगवान समझा देंगे कि ऐसा बन्दर-पन न किया करें; और हनूमान आ कर उनसे कह देंगे कि भाई ग़लती हुई, जाने दो। बस इस तरह सारी बात तय-तमाम, रफ़ा-दफ़ा हो जायगी।

पर कई दिन बीत गये, न हनूमान आये, न कुछ हुआ। भगवान रामने एक कानसे सुन कर, दूसरे कानसे निकाल दिया। ऐसा उन्हें नहीं चाहिये था।

इसी समय नन्ददासने भी आ कर आड़े हाथ लेना शुरू किया। उन्होंने कहा—'देखिये, पूज्यवर भाई साहब, जो कहा सो कर दिखाया।'

तुलसीदास चुप। क्या बोलते; बात तो ठीक ही थी। उनके इष्टदेव उनकी इतनी भी सम्मान-रक्षा नहीं कर सकते कि हनूमानसे माफ़ी मँगवा दें। इन बातोंसे तुलसीदासजी इतने दुःखी हुए कि उन्होंने अपने भगवानसे निपटनेकी ठान ली—प्रेमपूर्वक, विनयपूर्वक, पर अवश्य।

पर कैसे? तुलसीदास माथे हाथ रख कर सोचने लगे। सोचते, सोचते, सोचते.......हाँ यह, बस यही। तुलसीदासके मुख-मण्डलपर स्मित हास्य दौड़ गया। उन्होंने आकाशकी ओर हाथ उठा कर कहा—'प्रभु! कृपया क्षमा करना, आज मैं वह कर रहा हूँ जो कभी न करता। पर अब क्या करूँ, लाचार हूँ, आप सुनते नहीं। मैंने आपके बचपनका वर्णन किया, आपकी

किशोरावस्थाका वर्णन किया, आपकी जवानीका वर्णन किया, अब मैं आजसे आपके बुढ़ापेका भी वर्णन करूँगा। आप नहीं मानते तो क्या करूँ।'

और साबित करनेके लिए कि यह कोरी धमकी नहीं है उन्होंने लेखनी उठायी और अपनी नोट-बुकमें लिख मारा—

सियाबर कुबरी टेकत जात।
पाके केस चाम सब सिकुरे ज्यों सुरती के पात।।
जो प्रभु मारहुके मदमोचन सकल जगतके तात।
तुलसीदास उनकी यह गति लखि बरनत औ सकुचात।।

इसका फल तत्काल हुआ। उसी रातको हनूमानजीने प्रकट होकर तुलसीदाससे कहा—'अरे बाबा! बोल माफ़ी कैसे माँगी जाती है, मैं तो जानता भी नहीं, कभी माँगी नहीं। पर आज भगवानने कहा कि जब तक माफ़ी न माँग आयेगा तेरा रातिब, तेरी रसद, तेरा राशन बन्द रहेगा।'

यह सुनना था कि तुलसीदासपर घड़ों पानी पड़ गया, और वे ऐसे पानी-पानी हुए कि हनूमानके जो चरण समुद्र लाँघते समय भींगे तक न थे वे आज उनके प्रेमाश्रुओंमें डूब गये।

ज़ीट बहादुर

आज मुझे कहीं ठाँव नहीं; घरके अन्दर काँव-काँव है तो बाहर बैठकमें म्याँव-म्याँव। भीतर बच्चोंके गुलगपाड़ेसे पनाह पानेकी एक जगह बाहरकी बैठक थी, सो कल रातमें वहाँ तख़्तके नीचे बिल्लीने बच्चे दे दिये।

कहाँ जाऊँ ? और कहाँ बैठ कर उन बिलोंका अध्ययन करूँ जिनकी जल्द भरपाई न हुई तो हाथापाईका सामना था ।

इतनेमें किसीने बाहर दरवाज़ेपर दस्तक दी । चलिये फिर कोई तक़ाज़े वाला आन पहुँचा । नोकरको बाहर देखनेके लिए भेज कर सोचने लगा कि अगर दरज़ी हुआ तो कहूँगा कि भाई, तुमने मेरे कपड़ोंमें न जाने कैसे मनहूस जेब इस बार लगाये हैं कि उनमें कहींसे कुछ आही नहीं रहा है ; मोदी हुआ तो कहूँगा कि सावजी, अपने बक़ायेसे अगर भेंट करना चाहते हो तो अभी और कुछ दिन उधार देकर मेरे इस शरीरको बरक़रार रखो ।

पर नोकरने लौट कर कहा कि पं० ज़ीट बहादुर शर्म्मा आये हुए हैं और बैठकमें आपका इन्तज़ार कर रहे हैं । मेरे पूछने पर कि वहाँ क्यों बिठाया, वहाँ तो बिल्लीके बच्चे बिलबिला रहे हैं—उसने बताया कि

बहूजीने जबसे वहाँ एक कटोरी दूध तख्तके नीचे रखवा दिया है तबसे सब शान्त हैं।

मैं ज़ीट बहादुरसे मिलने नीचे चला। वही एक ऐसे व्यक्ति थे जो गढ़ेमें गिरे हुए मेरे दिलको इस समय सहला कर बहला सकते थे।

इस नगरमें ज़ीट बहादुरजीके परिचयकी जिसे अपेक्षा हो वह उपेक्षाके योग्य माना जायगा। लोगोंका विश्वास है कि वह लग्गी जिससे बादल खोद कर पानी बरसाया जाता है, इन्हींकी खोपड़ीमें रक्खी जाती है। दूनकी लेने वालोंकी दुनियामें जहाँ सभी बावन हाथके होते हैं वहाँ भी इनके आगे सब बावन अंगुलके ही जँचते हैं। बेपरकी उड़ाने वाले बड़े-बड़े उड़ायक इनके सामने उड़नछू हो जाते हैं। गपबाजोंका तो ताज इनके क़दमोंपर लोटता रहता है।

इन्हीं कारणोंसे लोगोंने इनके असली नाम जीत-बहादुरको बदल कर ज़ीट बहादुर कर दिया था।

मेरा एक पैर अभी कमरेके बाहर ही था कि पं० ज़ीट बहादुरने चिल्ला कर कहा—'अजी तुमने कुछ सुना ?'

'क्या कोई ख़ास बात ?'—मैंने पूछा।

'सारे शहरमें शोर है और तुम पूछते हो कोई ख़ास बात।'

'क्या है कुछ कहो भी।'

'तुमने शहर-कोतवालको देखा है न ? क्या खड़ी-खड़ी मूँछें उसकी थीं, जुरान्टीकी झाड़ीकी तरह।'

'हाँ, तो क्या हुआ ?'

'कल रातमें उसकी मूँछें दीमक चाट गयीं।'

'अरे !'

'हाँ, आज सुबह नींदसे उठ कर मूँछोंपर हाथ ले गया तो वहाँ मुट्ठी भर वल्मीककी बाँबी हाथ लगी।'

'यह खूब रही।'

'वह देखो, सामने लाला मलूकदासजी चले जा रहे हैं। सम्भव है वहीं जा रहे हों, समवेदना प्रकट करने।'

'पर आज टोपीके स्थानपर साफा क्यों बाँधे हैं ?'

'तुम्हें नहीं मालूम क्या ? उनके सरपर हार्निया हो रही है न। उसीको छिपानेके लिए अब साफा बाँधते हैं।'

'पर हर्निया तो नीचे आँत उतरनेको कहते हैं जिसपर साफा नहीं, पेटी बाँधी जाती है।'

'तुम तो यार पूरे बकटोंटों हो। हर्निया नहीं, हार्निया, याने H-O-R-N-I-A। मलूकदासजीके सरके दोनों ओर, कानों से २-२ इंच ऊपर, और सिंघाड़ेके आकारकी दो गाँठें निकल रही हैं, जो डाक्टरोंका कहना है आगे चल कर सींगें बन जायँगी। इसी रोगका नाम Hornia है। पहले होनोलूलूमें यह नया रोग प्रकट हुआ;

वहाँसे टीटीकाका होता हुआ अब यहाँ पहुँचा है। पहला केस इस देशमें लालाजी का है।'

'कोई इलाज इसका ?'

'डाक्टरोंका कहना है कि आपरेशनसे जहाँ आधी आशा सींगके जानेकी है वहीं पूरा अन्देशा ख़ुद लाला जीके जानेका भी है।'

'तब ?'

'एक आसरा वैद्योंका अब रह गया है। उनके यहाँ तो, तुम जानते ही हो, भूत और वर्त्तमान क्या भविष्यत्‌के भी तमाम रोगोंकी चिकित्सा लिखी हुई है। कविराज पण्डित कल्पनाथका कहना है कि आयुर्व्वेदके प्राचीन ग्रन्थोंमें विषाणिकाके नामसे इस व्याधिका उल्लेख मिलता है। जिस नगरमें संक्रामक रूपसे यह एक बार फैला था उसका नाम ही बादमें शृंगवेरपुर पड़ गया।

'अच्छा !'

‘हाँ । और कविराज महोदय लालाजीकी इस सींगको जड़से निकाल देनेका जिम्मा भी लेते हैं पर दवा तैयार करनेके लिए जो चीज़ें वे चाहते हैं वे काहे जल्दी जुट सकेंगी ।’

‘जैसे ?’

‘जैसे टिटिहरी नामक पक्षीकी कानी उँगलीका अन्तिम पोर—पाव भर; औघड़ साधुओंकी नाकका बाल —सेर भर; हुक्का पीनेवालोंके फेंफड़ोंमें तमाखूका जो जठा जम जाता है—वह डेढ़ पाव ।’

‘लाला जी पैसेवाले हैं, शायद सब चीज़ें मुहैया कर भी लें ।’

‘हाँ, पैसोंका क्या पूछना ! मकानके नीचे ग्यारह मंज़िलका तहख़ाना है, ठसमठस भरा हुआ । इनके परदादा नवाब वाजिदअली शाहके फ़र्राशके मुनीम थे ।’

‘फ़र्राशके मुनीम ? फ़र्राशको वेतन कितना मिलता रहा होगा ?’

'बस ढाई रुपये माहवार और एक लोटा खिचड़ी रोज़।'

'खिचड़ी ?'

'हाँ खिचड़ी। नवाब साहब रातमें सिर्फ़ खिचड़ी खाते थे, उसीमेंसे एक लोटा रोज़ उनके फ़र्राशको मिलती थी।'

'इतनी शौकीन तबीयतका आदमी, चाहता तो लाखोंका कौर खाता, वह सिर्फ़ खिचड़ी खाता था ? कैसे कोई यक़ीन कर ले ? तुम्हें कहने भी न आया।'

'तुम तो यार पूरे हुड़पेंच हो, तुम इन बातोंको क्या समझो। सुनो वह खिचड़ी कैसी होती थी। मलूक-दासके बाबा, जो उस समय बच्चे थे, अपने पिता याने मुनीमजीके साथ एक रोज़ उस फ़र्राशके यहाँ गये। उन्हें लालच लगी कि ज़रा चखें यह खिचड़ी होती कैसी है। सो उसके लोटेमेंसे एक कुल्हिया भर वे चुरा लाये। पर चखना उनके भागमें नहीं था। घर आ कर

वह कुल्हिया उनके हाथसे आँगनके पत्थरपर छूट पड़ी और खिचड़ी वहीं फैल गयी। इतनी दशाब्दियाँ बीत गयी हैं, उस पत्थरने अपनी छाती पर कितने बैसाख-जेठ और कितने सावन-भाँदों झेल डाले हैं, पर जहाँ

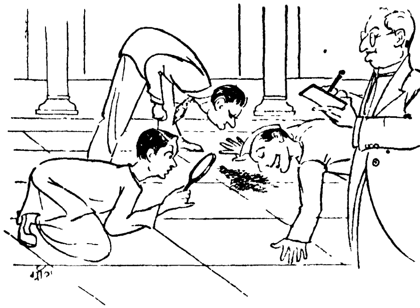

वह खिचड़ी गिरी थी घीकी चिकनाहट वहाँ अब भी ज्यों-की-त्यों बनी हुई है और मसालोंकी ख़ुशबू अब भी उसमेंसे महमह निकलती रहती है। दूर-दूरसे इतिहासके विद्यार्थी उस पत्थरको सूँघने आते हैं।'

'लेकिन ढाई रुपये दरमाहामें उस फ़र्राशको कितनी बरकत होती थी कि उसे एक मुनीम रखना ज़रूरी

हुआ, जिस मुनीमकी पाँचवीं पीढ़ी भी अभी तक मज़े झकझोरती चली जा रही है ।'

'तुम तो यार पूरे ढँकढोर हो ; इन बातोंको समझनेके लिए अक़्ल चाहिये । नवाव वाजिद अलीके यहाँ सुबहसे मिलने वालोंका ताँता लगता था । सबको पानकी गिलौरियाँ भेंट की जाती थीं । हर गिलौरीमें एक लौंग खोंसा रहता था । इस लौंगकी डंडी ठोस

सोनेकी और फूल हीरेका होता था । शिष्टाचार यह था कि लोग पान खा कर लौंग वहीं फेंक देते थे । यह सारा लौंग फ़र्राशका भाग होता था । इसी लौंगके

कई डोलचे वह रोज़ झाड़ू दे कर बटोरता था। उसके मुनीम जी भी दस-पाँच मुट्ठी उसमेंसे रोज़ झटक लाते थे।'

मैं सुन कर चुप रहा। ज़ीट बहादुरने पूछा—'क्यों, क्या सोच रहे हो?'

'मैं सोच रहा था कि तुम्हें कहाँसे ये उटक्करलैस बातें सूझती हैं। तुम्हारा दिमाग है कि अंटसंटका कंटर?'

ज़ीट बहादुरने हँस कर कहा—'लेकिन यार, आसमान तो मैंने तुम्हें भी गत सप्ताह झँका दिया था।'

'कहाँकी बात! इस फेरमें न रहना। जिस समय सारा शहर आकाश निहार रहा था मैं घूम-घूम कर वह तमाशा देख रहा था।'

एक पखवाड़ेकी बात हुई। शहरमें एक गुमनाम नोटिस घूमी थी कि आगामी सोमवतीको दोपहरमें ठीक बारह बजे सूर्य्यसे पन्द्रह हाथके फ़ासलेपर दक्षिणमें

एक तारा निकलेगा । जिन्हें देख पड़ेगा उनका एक मासके अन्दर परम भाग्योदय होगा ? जिन्हें न देख पड़ेगा उनका एक मासके अन्दर महा अनिष्ट होगा।

सो इस सोमवतीको दोपहरमें बारह बजे सड़कोंपर, छतोंपर, मैदानोंमें, शहर-का-शहर उमड़ पड़ा। सारा कामकाज, यहाँ तक कि दफ्तर-कचहरी भी छोड़छाड़ कर लोग बाहर निकल पड़े। कितनी गरदनें मुरक गयीं और पीठें झुक गयीं, ऊपर ताकते-झाँकते। और वह तारा सबको दिखायी भी पड़ा। एक क्षणके शतांशके लिए ही सही पर उसका दर्शन पाया सबने। अपना-अपना भाग्योदय सबको इतना अभीष्ट था, अपने-अपने अनिष्टसे सभी इतने सशंक थे कि उसका दिखना नहीं, न दिखना अचम्भा होता।

मुझे सुराग़ लग गया था कि यह सारी जुलबाज़ी ज़ीट बहादुरकी है। उनकी सौ रुपयेकी शर्त बदी थी घासीरामजीसे कि वे तमाम शहरको एक साथ

बेवक़ूफ़ बना सकते हैं। और घासीरामजी को यह सौ रुपये देने पड़े थे।

ज़ीट बहादुरने कहा—'तो तुम इस बार मेरे चकरव्योंतसे बच गये। अच्छा, समझूँगा तुमसे। कभी ऐसा हूला दूँगा कि तुम्हारी सारी हेंकड़ी हिमाचलके पार जा पड़ेगी।'

उनके जानेके बाद मिज़ाज मेरा फिर उसी गड़प्पेमें जा गिरा जहाँसे उनकी ज़ीटने अभी मुझे उबारा था। तीन आमदनी और तेरह ख़र्चमें कोई तिकड़म नहीं बैठ रहा था। और आज तो ऐसा लग रहा था कि आकाश और पातालको छोड़ शेष सभी दिशाओंसे पावनेवाले अपने-अपने बक़ायोंके पुरजे लिये चलते चले आ रहे हैं। एक-दो हों तो कोई अपनी रीढ़को थामे खड़ा भी रहे।

शामको भी बाहर नहीं निकला। क्या मुँह ले कर निकलता जब सन्दूक झाड़-पोंछ कर सत्ताईस रुपये मिले

ग्रौर देनेका टोटल हो सात सौ । नोकरसे कह कर कि कोई ग्रावे तो कह देना नहीं हैं, मुँह लपेट कर सरे शामहीसे पड़ रहा ।

थोड़ी देरमें नौकर तीन कार्ड ले ग्राया कि ये बाबू लोग ग्राये थे ग्रौर जब मालूम हुग्रा कि ग्राप घरपर नहीं हैं तब इन्हें छोड़ कर चले गये । मैंने कार्ड उससे ले कर पढ़े; ग्रम्बाप्रसाद, सुमेरचन्द्र, वैकुण्ठनाथ, तीनों मेरे सुपरिचित, पर ऐं——यह क्या ? तीनों कार्ड पर लिखा था बधाई, बधाई, बधाई । कैसी बधाई, किस बातकी बधाई ? इसकी कि मुझे सत्ताईस रुपयोंसे सात सौका हिसाब चुकाना था !

यही सोच रहा था कि नोकर फिर दो कार्ड ले कर पहुँचा। साँवलदास, सिंहेश्वरसिंह, ग्रौर फिर वही बधाई, बधाई। यह माजरा क्या है ? किससे पूछूँ ? शायद भाग्यने किसी ग्रोरसे करवट ली हो जिसका पता मुझे छोड़ ग्रौर सबको लग गया हो। इस विचारसे

मनमें जो मौजें उठीं वे मुझे स्वप्न-लोकमें बहा ले गयीं।

सुबह नींद खुली थी कि नोकर दो तार दे गया। भेजनेवाले थे पासके ज़िलोंसे पं० टीकाराम और बा० दाऊदयाल; और बात थी वही बधाई, केवल एक शब्द बधाई। अब यह बधाई मेरे स्नायुओंपर करेन्ट मारने लगी।

मैं उठ बैठा कि नहा-धोकर ज़रा बाहर निकलूँ और पता लगाऊँ कि सौभाग्यका कौनसा क़राबा मेरी चाँदपर फट पड़ा है जो इस तरह बधाइयोंसे अभिषिक्त हो रहा हूँ। पर दाढ़ी खुरच रहा था कि नोकर इस बार एक पत्र लेकर पहुँचा। पत्र था अपने मित्र लाला बंसीधरका। लिखा था——'कल रातमें दैनिक अहवालके सांध्य संस्करणमें समाचार पढ़ा। पढ़ कर बड़ी प्रसन्नता हुई। अनन्त बधाई।'

अहा हा हा! कहीं कोई लाटरी तो नहीं मिल

गयी। मुझे ख़बर ही नहीं और सारे जहानको ख़बर हो गयी। मैंने नोकरको बाज़ार दौड़ाया, हिन्दी अहवालकी एक प्रति लाने। तब तक हवाई महलोंमें बैठ कर मनके लड्डू गपकता रहा।

अहवाल आया। चट खोला और पट पढ़ा। शुरू पेज पर ही बाक्सके भीतर छपा था—

बधाई !

हमारे प्रसिद्ध नागरिक लाला झाऊलाल जी की पत्नीको कल रातमें बिना किसी हैरानी या परेशानी के चार-चार बच्चे एक साथ पैदा हुए। डाक्टर या नर्सकी ज़रूरत तक न पड़ी। जच्चा अपने चारों बच्चों सहित स्वस्थ और प्रसन्न है।

मैंने अख़बार नोकरके सरपर दे मारा और बाहर भागा। पड़ोससे अहवालके दफतरमें फ़ोन मिलाया।

‘हलो, अहवाल कार्य्यालयसे बोल रहा हूँ।’

‘सम्पादक ससुरा है ?’

‘ क्या कहा आपने ? ’

‘मैंने पूछा सम्पादक महोदय हैं ? मैं झाऊलाल हूँ, सम्पादक से..............’

‘ अख्ख़ाह लाला जी ! बधाई बधाई........... ’

‘ बधाईकी ऐसी-तैसी । यह क्या तमाशा है कि मुझे चार बच्चे...........’

‘ तमाशा नहीं महराज ! यह तो भगवानकी देन है । कोई जिन्दगी भर बाबाजीका भभूत रगड़ता रह जाता है — सन्तान का मुँह नहीं देखता, और एक आप हैं कि झोल-के-झोल........... ’

‘ लेकिन ओ रे सम्पादककी दुम...........’

‘ मैं प्रधान सम्पादक हूँ, दुम तो मेरे सहकारी कहलाते हैं । ’

‘ अच्छा प्रधान सम्पादक जी ! यह ख़बर किसने उड़ायी है कि मेरे घर चार बच्चे...........’

'मेरा रिपोर्टर यह ख़बर ले आया था।'

'उस रिपोर्टरको गलेमें भोट बाँध कर गंगामें फेंक आइये।'

'ख़बर ग़लत है क्या ?'

'बिलकुल ग़लत, सोलहो आने ग़लत।'

'लेकिन मेरा रिपोर्टर परखा हुआ पुराना आदमी है। उसकी ख़बरें कभी ग़लत नहीं होतीं।'

'मैं कह रहा हूँ कि ख़बर ग़लत है, ग़लत है, ग़लत है।'

'अच्छा अच्छा, रिपोर्टर बाहर गया है, आता है तो उसे आपके पास भेजता हूँ। उसीसे समझियेगा कि क्या बात है। लेकिन अपने घरमें अच्छी तरह पहले दरियाफ़्त तो कर लीजिये, शायद ऐसा कुछ हुआ ही हो.........'

मैं टेलीफ़ोन पटक कर घर भागा कि हो सके तो पत्नीके कानों तक यह गपड़चौथ न पहुँचने दूँ। पर

वहाँ वे लेजुरकी तरह ऐंठी मेरे लिए तैयार बैठी थीं। उन्हें सुनगुन लग गयी थी। उन्हें बुरा माननेका मुझसे अधिक हक़ था। वे इसे अपने पवित्र कोखके साथ एक दुकड़हा मज़ाक़ समझ रही थीं। जिस मरदूदने यह सारी खुटचालीकी थी उसका मेरी तरह उन्हें भी पता नहीं था पर धोबीको न पाने पर जिसका कान उमेठा जाता है वह मैं तो सामने ही खड़ा था। उन्होंने मुझे सरसेटना शुरू किया।

मेरी यह कपाल-क्रिया उस समय तक जारी रही जब तक कि नोकरने अहवालके रिपोर्टरके आनेकी सूचना नहीं दी। बाहर आकर मैंने रिपोर्टरसे पूछा—
'क्यों भाई ! यह क्या खिलवाड़ तुमने किया है। यह ख़बर कि मेरे घरमें चार बच्चे एक साथ.........'

'लाला जी, मैं क्या करूँ, कल मैं आपकी गलीसे साइकिल पर जा रहा था कि आपके दरवाज़ेपर खड़े पं० ज़ीट बहादुर शर्माने बताया कि आपके घर.........'

'अच्छा ! तो यह ज़ीट बहदुराकी शरारत है, अब समझा । लेकिन भले-आदमी, मुझसे एक जबान तुम पूछ तो लिये होते ।'

'लाला जी, जिस गुरूने मुझे रिपोर्टरी पढ़ायी थी उनका वचन था कि बढ़िया समाचार पाते ही ले उड़ो । पहले छपवाओ, पीछे पूछो ।'

'तुम्हारे गुरूजी मुझे मिलें तो मैं उन्हें गोजीसे पूजूँ । और तुम्हें क्या कहूँ, यही इच्छा होती है कि तुम्हारी चुरकी पकड़ कर तुम्हें पेंडुलम की तरह झुला दूँ ।'

'आप नाराज़ न हों, कहिये खण्डन छपवा दूँ । पर खण्डनमें कोई लुत्फ़ नहीं । फिर आपके चार बारमें चार बच्चे हों या एक बारमें, किसीके बापका इजारा ?'

यह ऐसा चोखा तर्क था कि बड़े-बड़े चौकोर तार्किकोंको भी तिकोना कर देता, मेरी क्या बिसात थी ।

मेरे तो सारे एतराज़ उसके इस उत्तरने तिड़ी कर दिये। मैं गबड़गुंगसा उसका मुँह निहारने लगा।

'और लाला जी!'—वह कहता गया—'मान लीजिये आपने इस बार खण्डन छपवा दिया; पर भगवानकी माया कौन जाने, साल-खाँडमें कहीं सच-मुच आपके यहाँ बच्चोंकी चौकड़ी पैदा हो पड़े, तब उस समय वह समाचार छपवाने जाइयेगा तो लोग यही कहेंगे कि यह शख़्स रोज़ भेड़िया आया भेड़िया आयाका मज़मून बाँधता है। है न?'

मैं अब और नहीं सुन सका। मैंने झुक कर रिपोर्टर महोदय के चरण छुए और कहा—'भगवन्! अब आप अपने आफ़िसको सिधारें। वहाँ आपके बिना आपका अख़बार दम तोड़ रहा होगा।'

उस जहन्नुमी रिपोर्टरको विदा करके मैं अपने कमरेमें जा लेटा। नौकरको सख़्त ताकीद कर दी कि लाट साहब भी आवें तो Not at home कह देना।

बधाईके तार और पत्र आते रहे, यही साहित्य पढ़ता रहा।

तीसरे दिनके बधाईके पत्रोंसे पता चला कि अंगरेज़ी अख़बारोंमें भी यह समाचार धड़ल्लेसे छप गया था, शायद रायटरने बिदेशोंमें भी तार तड़तड़ा दिये थे। एक मित्रने किसी कम्यूनिस्ट पत्रकी सम्पादकीय टिप्पणीकी कटिंग भेजी जिसमें लिखा था कि ऐसे बापोंको सरे-बाज़ार कोड़े लगवाने चाहिये जो इस जन-संकुल देशकी आबादीकी समस्याको इस तरह और भी उलझा रहे हैं।

कई दिन इसी तरह घरमें मुँह छिपाये पड़ा रहा। अँधेरा होनेपर घरसे निकलता कि ज़ीट-बहादुर मिलें तो उन्हें कच्चा चबा जाऊँ। पर वे समयसे कहीं डोल जाते थे।

पाँचवें दिन घरसे ज़रा जल्दी निकला और उनके घरके सामनेवाली गलीमें आड़ लेकर खड़ा हो रहा।

वे थोड़ी देरमें घरसे बाहर आये और एक ओरको चल पड़े। दस डग भी उन्होंने न भरे होंगे कि मैंने पीछेसे लपक कर उनका घेंटा चाँप लिया। उन्होंने सकपका कर मेरी ओर देखा तो मैंने कहा—'चुपचाप मेरे साथ चले आओ, नहीं तो यहीं दे मारूँगा और मारते-मारते मोमियाई निकाल लूँगा।'

मैं उन्हें हाथ पकड़ कर अपने घरकी ओर खींच ले चला। उन्होंने कहा—'अरे सुनो तो, ज़रा सुनो तो, क्यों बगूला हो रहे हो ?'

'तुम्हें नहीं मालूम।'—मैंने उत्तर दिया—'मेरे घरमें चार बच्चे एक साथ जनमे हैं और सब-के-सब भूखे हैं। आज तुम्हारी बोटी काट कर उन्हें खिलाऊँगा।'

'अच्छा ज़रा ठहर कर मेरी बात तो सुन लो, फिर जो इच्छा हो करना।'

मै एक सायबानके नीचे रुक गया और बोला—'कहो क्या कहते हो ?'

'भाई, इसमें मेरा कोई क़सूर नहीं। उस दिन बाहर बैठकमें मैं तुम्हारा इन्तज़ार कर रहा था कि तख़्तके नीचेसे म्याँव-म्याँव सुनायी पड़ा। झुक कर देखा तो बिल्लीने चार बच्चे जने थे। तुमसे मिल कर बाहर निकला तो साइकिलसे जाता हुआ अहवालका रिपोर्टर मुझे देख कर उतर पड़ा और, जैसी इन रिपोर्टरोंकी आदत होती है, पूछ बैठा कि पंडित जी कोई नयी ख़बर? मैंने कहा कि यही एक नयी ख़बर है कि यहाँ लालाजीके घरमें चार बच्चे एक साथ हुए हैं। अब अगर 'तुम्हारे घरमें' का अर्थ वह 'तुम्हारी घरवालीको' लगा लेता है तो इसमें मेरा क्या क़सूर?'

'अच्छा चलो, यह सफ़ाई उन्हीं घरवालीको देना। उन्होंने तुम्हारे लिए चुन-चुन कर मोटी लुआठियाँ जुटा रक्खी हैं।'

वे छटपटाये बहुत पर मेरे हाथोंके शिकंजेमें घसिटते हुए मेरे घर तक आ ही गये। धकेलते हुए मैंने

उन्हें ला कर अपनी श्रीमतीजीके आगे खड़ा कर दिया और कहा—'लो, यह आ गये, इन्हें तलोगी या भूनोगी ?'

गत कई दिनोंसे उनका यह हाल था कि ज़ीट बहादुरका नाम सुन कर वे बारूद बन जाती थीं। मैं तो समझता था कि उन्हें सामने पा कर वे नोंच खायँगी। पर नहीं; वे जो गालोंमें फुटबाल दबाये घूमती रहती थीं वही इस समय मारे हँसीके फुटेहरा हो रही थीं। बड़े प्रेमसे उन्होंने ज़ीटबहादुरको प्रणाम किया और कुरसी उनकी ओर खिसकाती हुई बोलीं—'आइये पंडित जी आइये। कहिये सब कुशल है न ?'

'सब कुशल ही था, पर अभी थोड़ी देरसे आपका यह राक्षस पति मेरे शरीर और जीवात्मामें विछोह करा रहा है।'

'वह सब उनका प्यार-दुलार था, उसका ख़याल न करिये। आज आप बड़े मौक़ेसे आ गये।'

'बड़े मौक़ेसे ?'

'जी हाँ ! मुझे जो चार बच्चे हुए हैं उनकी आज छठी है न।'

पंडित जी सन्नाटा खींच कर ज़मीन निहारने लगे, जैसे वहाँ गड़ जानेकी जगह खोज रहे हों।

'अख़बारोंमें धूम मच गई, देस-दिसावरोंमें शोहरत हो गयी; मेरे राक्षस पतिपर बधाइयोंके ओले बरसे। और आप फूटी ज़वान एक आशीर्वाद देने भी न आये।'

मारे शर्मिन्दगीके ज़ीट बहादुर का सिर कई पसेरीका हो कर लटक गया था। उसी तरह नीची नज़र किये वे बोले—'मेरी अच्छी भाभी ! अब जाने भी दो, कितना भिगो-भिगो कर मारोगी। माफ़ कर दो, और क्या कहूँ।'

वह खिलखिला पड़ी—'अच्छा, छठीकी मिठाई तो खाते जाइये।'

नौकर दौड़ कर बाज़ारसे बहुत सारी मिठाइयाँ ले आया। सब उधार ही रही होंगी। घरमें पैसा तो इस समय ऐसा-वैसा था।

मैंने समझा था कि यह पंडित बैठ कर खायगा और मैं खड़ा-खड़ा अपने होंठ चाटूँगा। पर नहीं, पीढ़े दो बराबरमें रखे गये। एक पर ज़ीट बहादुर बैठे, दूसरे पर मैं बिठाया गया। मिठाइयाँ परसी गयीं। ज़ीट बहादुरने अच्छे हाथ झारे पर मुझसे बहुत बीस नहीं रहे।

उनके जानेके बाद मैंने उससे पूछा—'यह तुम्हें आज क्या सूझी थी कि मिठाइयोंकी दावत दे डाली? मिठाइयाँ तो मैं पचा जाऊँगा पर हलवाईकी बिल कौन पचायेगा?'

वह मेरे पास आ कर खड़ी हो गयी और बोली—'ज़रा मेरी कमरमें हाथ तो डालिये।'

यह बेवक़्तकी शहनाई कैसी? पर मैंने हुक्मकी

तामील की । उसने कहा—'अच्छा अब ज़रा नाचा तो जाय, जैसे साहब-मेमके जोडे नाचते हैं ।'

'तुम्हारा सिर घूम गया है क्या ?'—मैंने चकपका कर पूछा ।

इसके उत्तरमें एक खुला लिफ़ाफ़ा उसने मेरे हाथपर रख दिया ।

पहले मैंने पता देखा । पत्र मेरी पत्नीके नाम था, मार्फ़त मेरे । मुहर थी कलकत्ते की ।

भीतर पत्रमें सिरनामा था—माइ डियर मैडम—

और नीचे लिखा था—योर्स ट्रूली—एफ़० डबल्यू० जेनकिन्स।

पत्र था—'मैं एक अमरीकन हूँ। अपने कामसे गत सप्ताह कलकत्ते आया था। आज हवाई जहाज़से अमरीका लौट जाऊँगा।

सन् १८९३ में मेरी माताको तीन बच्चे एक साथ हुए थे। अब मैं उनमें से एक बचा हूँ। मेरा नियम है कि संसारमें जिस किसी माताको तीन या तीनसे अधिक बच्चे एक साथ पैदा होते हैं मैं उस माताको सादर पुरस्कृत करता हूँ। अतः यह २५००) का चेक आपकी सेवामें भेज रहा हूँ। कृपया स्वीकार करियेगा।'

कविता-खण्ड

मैं जो 'क़ैसका साईस हूँ लैलाके घसियारोंमें हूँ'—आज कविता और कवियोंके सम्बन्धमें कुछ विचार प्रकट करने जा रहा हूँ।

मेरे विचारसे इन विचारोंको विचारशील लोगोंके आगे विचारार्थ उपस्थित करना अत्यन्त विचारपूर्ण होगा।

मैं पहले ही कह दूँ कि जहाँ बहुतसे लोग कविताको बुद्धिका बलग़म समझते हैं वहाँ मैं उसे मनका सरगम समझता हूँ।

जहाँ तक मेरी जानकारी है सच्चिदानन्द नामक परम-पुरुषके दो ही बेटे हुए; एकका नाम ब्रह्मानन्द पड़ा, दूसरेका काव्यानन्द। दोनों सहोदर तो हैं ही, सम्भवतः सहजन्मा भी हैं, क्योंकि आज पर्य्यन्त यह निर्णय नहीं हो पाया कि इनमें बड़ा कौन है।

गाना और रोना दोनोंसे अपनायत रखनेके कारण कविता बहुतोंको आड़े-बेड़े आ भी जाती है। फिर इसके प्रचारका तो पूछना ही क्या जब माटीकी गुमटीसे लेकर मकरानेके महल तक सर्वत्र इसकी जैजैकार हो।

पर अच्छी कविता कहते किसे हैं? कहना कठिन है। इस लिए कि कविताके बटखरे अब बिलकुल बदल गये हैं। आज कल इसकी परख-पहचान ही पंचोंके पचड़ेमें पड़ गयी है। अभी कुछ दिन पहले तक अच्छी

कविता वह थी जिसमें आत्माकी 'झिलमिल झंकार' हो, 'अंतःसलिला मानस-मन्दाकिनीकी कलकल पुकार' हो। अब अच्छी कविता वह समझी जाती है जो कर्ण-कुहरमें कुहराम मचा दे, हृदयमें कालिक-पेन पैदा कर दे, और भेजाका भुरकुस निकाल कर धर दे।

ऐसा लोग कहते हैं कि पुरानी पीढ़ियोंके कवि, कवि-कर्मकी ओर मन बढ़ानेके पूर्व, बरसों साधनाका अंडा सेते थे; और बहुत कुछ सीखने और घोखनेके बाद कानपरसे क़लम उतारते थे। यह उनका पुरातन-पंथी पोंगापन था। मैंने बारहखड़ी ख़त्म करनेके बारह घंटे बादसे पद्य-रचना प्रारम्भ कर दी थी।

उन दिनों समस्या-पूर्तिका एक सुन्दर संविधान था जिसके द्वारा कवियोंकी छुटाई-बड़ाईका या हेठी-जेठीका आसानीसे निश्चित निपटारा हो जाता था। समस्याओं की बेदी पर कवियोंको अपने 'हिरदेका हीर' निकाल कर रख देना पड़ता था। कौन कितने पानीमें है यह

साफ उजागिर हो जाता था। और समस्याएँ भी अकसर ऐसी कड़ाकेचूर होती थीं कि उनसे निपटनेमें माथा तड़क जाय।

उदाहरणके लिए—घरके न घाटके पै बाबू बड़े ठाट के—को किसी मित्र पर, और—बाप थे न दादे पै आप हरमजादे हैं—को किसी शत्रु पर लागू करके मैं भी कुछ कह निकलता; और—सोच क्यों करै रे मन होने दे दो-दो चोंच—पर बहुत सिरखपी करते तो आप भी कुछ फ़रमा लेते; पर—करमें सकोरीको सराब सिरका ह्वै गयो—इस दुर्घटनाके कारणोंपर प्रकाश डालना बड़े-बड़ोंके लिए भी कठिन हो जाता।

कविका दिमाग भी एक अजीब भूल-भुलैयाँ है। आप कुछ नहीं कह सकते कि कोई कवि किधरसे क्या बात लेकर कब और कहाँ पहुँचेगा। बहुधा और बहुत कुछ तो परिस्थितियों पर निर्भर करता है कि वह अब क्या हाँक लगायेगा। जब तक बाटी-चुरमेका बढ़िया

ब्योंत बैठता रहा तब तक तो राग-रङ्ग और रङ्गीनीके सिवा कवितामें और कुछ भाया-आया नहीं। उसका टोटा पड़ा और पेटमें आकाशका निवास होने लगा तो भक्ति-भाव-भादों-नदीमें बह चले। मान-पानमें व्यवधान पड़ा तो नीति-रसका नैनू निथारने लगे। और दर-दर दरवेशीकी बारी आयी तो भारी वैराग्य बघारने लगे।

हिन्दी-कवितामें दो पक्ष बराबर बने रहे, एक रागका दूसरा विरागका, एक सेलीका दूसरा नवेलीका; पर दोनोंमें आपसकी साँठ-गाँठ ऐसी रही कि एकका पलड़ा दूसरा सदा बराबर ही करता रहा। एक जब नग्न श्रृंगारकी पेंगोंमें रति-विपरीतकी परिपाटी पढ़ाने लगता है तब दूसरा मनको विषैके सङ्ग जाते देख उसके हाथ-पाँव तोरने उठता है। एक जिसे सीकरनवारी तू बसी-करनवारी कह कर लाड़-लड़ाता है उसीको दूसरा मज्जा-मेदा भरी चामकी तुच्छ थैली कह कर दे मारता है।

पर ज़रा सोचनेकी बात है कि रसकी पुरानी सरिता

अभी पूरी तरह सूखी भी न थी कि खारे आँसुओंके सोते जहाँ-तहाँ फूट पड़े। कोई तो सातवें आसमानकी बातोंपर बिसूर कर कहने लगा कि मैं छायावादी-रहस्यवादी कविता कर रहा था; कोई समय और समाजकी दशापर क्रंदन करके कहता है मैं क्रान्तिवादी-प्रगतिवादी कविता कर रहा हूँ। अधुना सभी अपना सिर धुन रहे हैं।

पं० खूबचंदको तो हम आप सभी जानतेहैं। हकू, हुताशन, हाहाकार और हाहन्त नामक काव्य-ग्रंथोंके प्रणेता पं० खूबचंदको कौन नहीं जानता। उनके ये ग्रंथ सत्साहित्यकी ऐसी निधियाँ हैं जिन्हें बढ़िया बनातके बेठनमें बाँध कर बारह बकसके भीतर बन्द रखनी चाहिएँ।

उनके हूक नामक ग्रंथका पहला पेज मैंने पढ़ा। पढ़ कर ठगमुर्री लग गयी। लिखा था——

तिमिर-तोमके रश्मि-रोममें
नीरवता के नाद-व्योममें
अविकल अविरल कोलाहलमय।

एकोऽहमके द्वैत-जालमें
अमर कालके अन्तरालमें
मूक हूक सम्भूत प्रलय-लय ।

केवल इतना ही पढ़ कर मुझे ऐसा भासमान हुआ कि जब तक दो-चार मासके लंघनके बाद दिमाग़का कोठा अच्छी तरह साफ़ न हो जाय तब तक इस ऊँचे दर्जेकी चीज़ समझमें नहीं आ सकती। पुस्तक मैंने जतनसे रख छोड़ी है; कभी पढ़ूँगा। प्रोग्राम यह है कि मेरा पड़पोता जब पचास वर्षका हो जायगा तब उसीसे पढ़वा कर सुनूँगा।

ख़ैर, छायावादी कविता तो एक चीज़ भी थी। वह हाँक-पुकार कर कहती थी कि मुझे समझ सको तो समझो, नहीं चूल्हेमें जाव। पर यह प्रगतिवादी कविता अजीब दिल्लगी है। जो भाव आकाशकी ओर देख कर महज़ हाय मारनेसे प्रकट हो सकते हैं उन्हें वह बेकार इतने सुन्दर शब्दोंमें और इतने सुन्दर ढंगसे प्रकट करती है—

तू—

तू बुड़बक
वे बिड़ौजासे अनूप
तू सड़ातन हाड़का स्तूप
वे हाटक, जातरूप
तू उनके फाटककी गिट्टी
गर्द लतमर्द मिट्टी
तू भकुआ
वे भारी भकोसवीर
वे तो चाभें माल
फोकटका
बेखटका
और क्यों बे !
तेरा यह हाल
तुझको लकड़ानी लिट्टी

यों तो जिसका भी विधाताने कुश लेकर मुँह चीरा है वह कविताके सम्बन्धमें ज़बान चला ही लेता है; पर मुझे तो ऐसा करनेका पूरा हक़ हासिल है, क्योंकि मैं स्वयम् भी एक प्रकारका कवि कभी रह चुका हूँ। अपनी

पचीसीमें पचासों पेज कविता मैंने की थी। अब क्या करूँगा, ख़ाक कि पत्थर ? ख़ाक होना है, पत्थर हो चुका हूँ।

एक रोज़ काव्यकी कोई नयी स्फूर्त्ति प्राप्त करनेके लिए मैं क़लम पकड़े हुए अपने मरियल दिलको कुरेद रहा था। इतनेमें 'कलकल' महाकाव्यके प्रणेता मित्रवर पं० औदुम्बर शर्म्मा आ पहुँचे।

उनके बारेमें प्रसिद्ध है कि और कवि जब तक कविताके दरबारमें घुटने टेकते रहते हैं तब तक वे उसके चोर-महलमें चक्कर काट आते हैं। उनकी सूक्तियाँ अन्त:करणमें वह खलबली मचाती हैं जो अमलतास पेटमें मचाता है। और कवियोंके संदेश और उपदेश भले ही तमाचोंसे हो कर रह जायँ पर उनके तमंचोंसे होते हैं।

'क्या कर रहे हो ?'—उन्होंने मुझसे पूछा।

'कविता सोच रहा हूँ।'

'तुम मूर्ख हो । कविता सोची नहीं जाती, की जाती है ।'

'मैं उसे कल्पनाकी जड़ाऊ चौकीपर बिठाना चाहता था ।'

'तुम लंठ हो । उसे कोरी बातोंकी बयारमें क्यों नहीं उड़ा लाते ।'

'मैं उसे चन्द्र-कलाओंकी चम्पाकली बना कर पहनाना चाहता था ।'

'तुम उल्लू हो । धूलकी रस्सी बट कर उसे बाँध लाना चाहिये ।'

मैं वास्तवमें वही सब न होता जो उन्होंने मुझे पुकारा था तो उनकी सलाहोंसे बहुत-बहुत लाभ उठाता । लेकिन मैं फुलेलका आचमन करनेवाला प्राणी, उनकी बातोंको पूरा समझा भी नहीं ।

पर यह मैं ख़ूब समझता हूँ कि आधुनिक कविताकी गति-विधिसे अपरिचित होना उतनी ही बड़ी मूर्खता है

जितनी बड़ी कि उससे परिचित होते हुए भी उसके सम्बन्धमें अपने विचारोंको सबके सामने प्रकट कर देना । मैंने आधुनिक काव्य-ग्रंथ कम नहीं पढ़े हैं; जिन्हें नहीं भी पढ़ सका हूँ उनमें कईकी समालोचना मैंने लिखी है । पर आनन्द जिसका नाम है वह राम जाने क्यों मुझे उनमें अधिक नहीं मिला । इधर अधिकांश हिन्दी-कविता जो मेरे देखनेमें आ रही है वह या तो बादी और अफराकी डकार है, या फेंफड़ोंका फालतू फूत्कार ।

न जाने यह कौन घड़ी है जब यह बात मेरे मुँहसे आज निकल रही है । मनमें रहती तो गुन करती, बाहर निकल कर ख़ून करेगी । ख़ैरियत है कि मैं हूँ एक बहुत अदना आदमी । आदमी भी क्या हूँ मानव-समाजमें एक क्षेपक-सा हूँ । कहीं किसी गिनतीमें होता तो इस बातको ज़बानपर लानेके अपराधमें अब तक ऐसी धुआँधार उड़ती कि मैं क्या, मेरे गयामें बैठाये हुए पितर भी सर सहलाते भागते नज़र आते ।

जैसे बिना साँस और बाँसके बाँसुरी नहीं बजती वैसे ही बिना अनुभूति और प्रेरणाके कविता नहीं बनती। जब दोनों हों और दोनों भर कठौता हों तभी कवितासे आशनाई करनेकी ठानिये; अन्यथा सिटपिटा रहिये ।

अहमकोऽहम्

पड़ोसी और मित्र होना भी आफ़तसे खाली नहीं। दो दिनसे घासीरामजीकी पत्नीके दूत दौड़ रहे थे कि आपकी बुलाहट है। जब तक नौकर आते रहे मैं तरह देता रहा पर तीसरे दिन सुबह जब उनका भाई, याने घासीरामजीका साला, बुलाने आया तब तो मुझे उसके साथ हो ही लेना पड़ा।

उनकी कोठीपर ऊपर पहुँच कर मैंने यह देखा कि भर्त्ता और भार्य्याके बीच एक भव्य भिड़न्तका दृश्य अभिनीत हो रहा है। घासीराम जी एक नीची कुरसीसे उठनेकी कोशिश कर रहे हैं पर उनकी सु-श्री महोदया अपनी पूरी शक्ति लगा कर उन्हें ऊपरसे चाँपे हुए उठने नहीं दे रही हैं।

मेरे आते ही वे घासीरामजीको छोड़ कर मेरी ओर घूम पड़ीं और बोलीं—'अब आप क्या झोली बुताने आये हैं ? मेरी इनकी झौं-झौं जब हो ही गयी तब.........

'आख़िर बात क्या है ?'—मैंने पूछा—'आपसमें इस बदअमलीकी नौबत क्यों आ पड़ी ? अभी घासीराम जीके ऊपर आपको देखकर मुझे ऐसा लगा कि जैसे आबनूसपर अरगजा..............

'SHUT UP ! मेरे सामने मेरे पतिको कोई आबनूस नहीं कह सकता। वे काले हैं तो आपकी बला से।'

'तब आप कृपया explain कर दें कि आपने इस व्यक्तिको बेकार क्यों पछाड़ रखा है ?'

'कई रोज़से मैं इनसे कह रही हूँ कि सुबह सात बजेके जितनी देर बाद ये चारपाई छोड़ेंगे, दस बजेके उतनी ही देर बाद मैं इन्हें खाना दूँगी। आज ये ८।। बजे सो कर उठे हैं, बस इन्हें ११।। बजे खाना आज मिलेगा। बिना सख़्ती किये ये ढर्रा नहीं पकड़ने के।'

मैंने घासीरामकी ओर देखा। वे सेशन-सुपुर्द से मुँह लटकाये बैठे थे। मुझसे गिड़गिड़ा कर बोले—'हे जी, देखो हम तुम मित्र हैं न।

'हाँ, ज़रूर।'

'बचपनमें हम दोनों साथ ही सड़कपर गुच्चीपारा खेला करते थे। तुम्हें याद है न ?'

'हाँ हाँ याद है।'

'एक बार धोखेसे तुमने मेरी कौड़ी जीत ली थी

तो मैंने तुम्हें दो घूँसे लगाये थे––जब तुम बाप-बाप चिल्लाने लगे थे। याद है न ?'

'मैं बाप-बाप तो नहीं चिल्लाया था।'

'तो दादा-दादा चिल्लाये होगे। कहनेका मतलब यह कि तुम मेरे पुराने गोइयाँ हो ; मेरी इस समय कुछ मदद करो, भैया। मेरी साँस बड़ी साँसतमें पड़ी है। इस कठकरेजी कामिनीसे मेरी रक्षा करो।'

मैंने उस कठकरेजी कामिनीकी ओर देखा तो वह मुझसे बोली––'लालाजी ! आपको याद होगा कि गत मास जब दाँतके दर्दसे आपका गलफड़ा सूज कर घंटाघर बन रहा था तब मैंने ही उस पर दवा लगा कर उसे पचकाया था। याद है न।'

'हाँ हाँ, ख़ूब याद है।'

'और उस दिन जब आपकी पत्नी नाराज़ हो कर आपको निकम्मा और लबड़धोंधों पुकार रही थीं तब मैंने ही समझा-बुझा कर उनका पारा उतारा था।'

'उन्होंने मुझे निकम्मा और लबड़धोंधों तो नहीं पुकारा था।'

'तो नालायक़ और घमड़घोंघों पुकारा होगा। कहनेका मतलब यह कि मैं इतना उपकार आपके साथ करती रहती हूँ, आप मेरे लिए इतना नहीं कर सकते कि आपके सामने ये जो मेरे फलाने बैठे हैं उन्हें ठिकाने लगा सकें ?'

घासीरामजीसे पूछनेपर उन्होंने यहाँ तक तो स्वीकार कर लिया कि वे सोते हैं पर—अधिक सोते हैं—के प्रश्नपर अपने पुट्ठोंपर उन्होंने हाथ भी न रखने दिया। किसकी बातें मैं सही मानूँ। मैं बड़े गड़बड़-झालेमें पड़ गया।

मैंने बुत्ता देकर जब अपना गला छुड़ाना चाहा तो घासीरामजीकी पत्नीने इसे मेरा भगोड़ापन समझ लिया और लगीं आँखें दिखाने। मैंने झल्ला कर कहा—'यह तो अच्छी चपकुलिश आपने मेरे लिए पैदा की। मैं क्या

निर्णय दूँ जब आपमें और घासीरामजीमें सोनेके पैमानेपर ही मौलिक मतभेद हो। आप जिसे अत्यधिक समझती हैं उसे वे जीवित रहनेके लिए केवल कामचलाऊ समझते हैं।'

'आप मेरे भाईसे पूछ लें, वह तो बिलकुल तीसरा आदमी है। दस दिन आये हुए, तबसे बराबर देख रहा है।'

लेकिन सबको आमने-सामने बटोर कर मुँह-दर-मुँह किचकिच करानी मुझे मंज़ूर नहीं थी। एक बार एक इसी तरहकी घरेलू पंचायतमें ख़ुद पंच महोदयको कन-चप्पड़ खाते मैं देख चुका था।

मैंने कहा—'नहीं, यह नहीं। करना यह है कि आप और आपके भाई, दोनों अलग-अलग घासीरामजीकी कल दिन भरकी पूरी दिनचर्य्या मेरे पास लिख कर भेज दें। मैं उन्हें भी राज़ी कर लेता हूँ, वे भी कलका अपना पूरा जीवन-वृत्त लिख कर मेरे पास भेज देंगे।

मेरा विश्वास है कि जिस विषयपर तीन आदमी एक साथ क़लम चलायेंगे उसकी तह तक पहुँचना कठिन न होगा ।'

मेरा यह प्रस्ताव तीनोंने स्वीकार कर लिया। मैंने जान बची लाखों पाये। मैं घर आया। तीसरे दिन तीन ख़रीते मुझे अपने टेबुलपर पड़े मिले। उनके मुख्य अंश इस प्रकार थे--

पत्नी महोदया

सबेरेका यही समय मेरे लिए बड़े खटरागका होता है, जबकि मुझे जा कर उन्हें जगाना पड़ता है, उठाना पड़ता है और नहाने-धोनेमें प्रवृत्त कराना पड़ता है। छोड़ दूँ तो नौ-दसकी ख़बर लें ।

जगानेका कृत्य भी साधारण नहीं है। वे चाहते हैं कि जगानेके लिए कोई नोकर या तो पायताने बैठ कर आहिस्ता-आहिस्ता तलवा सहलाये या मैं सरहाने खड़ी होकर मधुर-मधुर प्रभाती आलापूँ । मुझसे यह सब

होता नहीं। मैं या तो कानमें कागजकी बत्ती करती हूँ, या नौसादर-चूनाकी शीशी सुँघाती हूँ, या चारपाईपर बैठ कर थाली बजाती हूँ।

आज मैंने यह सब कुछ नहीं किया। आज मैंने लल्लूको बुला कर कहा कि जा अपने बाबूजीको जगा तो आ। उसने पूछा कैसे? मैंने कहा जैसे तेरी इच्छा हो वैसे। वह कुछ देर सोचता रहा, फिर खूँटीसे बड़ा आईना उतार कर उसे हाथमें लिए हुए उनके कमरेमें वह पिल पड़ा।

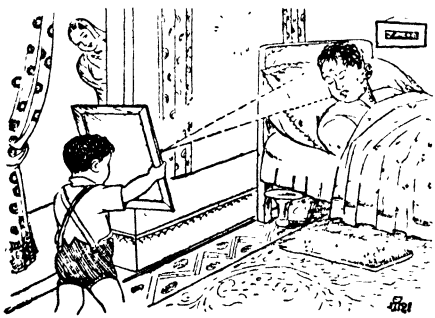

बादमें मालूम हुआ कि खिड़कीके पास धूपमें खड़े होकर वह इसी आईनेको उनकी आँखोंपर चमकाता रहा

जब तक वे जाग नहीं पड़े और उसे चपत लगानेके लिए उन्होंने चारपाई नहीं छोड़ी।

आज सूअर-गधा जपते हुए उन्होंने अपनी निद्रा भंग की। साढ़े आठके बाद ही वे अपने पैरोंपर खड़े दिखायी पड़े। मैं मसलहतन उन्हें सुबह कलेवा नहीं देती हूँ, दसके आस-पास सीधे भोजन करा देती हूँ। सो यह डेढ़-घंटेका समय उन्हें किसी तरह काट देना था। जिसे समयकी हत्या करनेके डेढ़-सौ उपाय मालूम हों उसके बारेमें मैं क्या लिखूँ कि उसने यह डेढ़ घंटा कैसे काटा। कुछ तो नौकरोंपर चीख़ने-चिल्लानेके दैनिक कर्त्तव्यके निर्वाहमें भी कट गया।

भोजनोपरान्त वे अपने शयन-कक्षमें पधारे। प्रकाशके सब मार्ग मूँद कर भीतर घनान्धकार कर दिया गया। और तब आप इस तरह लम्बायमान हो रहे जैसे चारो हाथ-पैरसे चारो दिशाका भान करा रहे हों।

घंटों बाद पतिदेवका दूसरा सबेरा हुआ और वे

'अन्तर्गतसे वहिर्गत' हुए। शाम हुई तो छतपर आराम-कुरसीपर जा लेटे; नाम था टहल रहे हैं। सात बजे मुंशी जी आ जमे जिनके साथ शतरंज होता रहा। फिर नौ बजे वे थालीपर दीख पड़े और दस बजे चारपाई पर। कल जब उनका भोर होगा तब तक धरती अपनी धुरीपर शायद आधी घूम चुकी रहे।

स्वयम् पतिदेव

आज सुबह साढ़े-सात बजे नींद खुली, बल्कि आठ रहा होगा, शायद नौ रहा हो। कमबख़्त लल्लूने आज जगाया। कैसे? उसकी न्यारी कथा है। जाने दीजिये।

सुबह जो लोग जल्दी चारपाई छोड़ कर उठ खड़े होते हैं उनमें कुछके पीछे तो प्रेरक शक्ति इस विश्वासकी होती है कि अब कोई तर और तरहदार जलपान प्राप्त हो कर रहेगा। यहाँ अपने लिए जलपानके नामपर ठनठनगोपाल है। मेरी पत्नी पशु-पालनपर जो पुस्तक लिखेगी उसके प्रारम्भिक

शब्द यही होंगे कि पति नामक पालतू जीवको सुबह कलेवा कदापि नहीं देना।

नींद अभी पूरी नहीं हुई थी पर दोपहरके भोजनका आनन्द सोच कर उठ बैठा। नया मिसिर बड़ा गँवार है। उसने कचनारकी कलियोंको फेंक कर केवल डण्ठलोंकी सब्ज़ी बनायी थी। बहुत झुँझला कर जब मैंने उससे कहा कि हे मिसिर तुम अपना मुँह फूँको, तब हड़बड़ा कर उसने चूल्हेमें फूँक मार दी; सारी राख उड़ कर घीके कटोरेमें उझल पड़ी।

मेरी पुरानी आदत हैं कि दोपहरमें भोजनके बाद दो-ढाई घंटोकी एक हलकी-सी झपकी मैं मार लिया करता हूँ। पर मेरे लड़के लल्लूके छोटेसे शरीरमें शैताननने इतनी शरारत भर दी है कि बस-रे-बस। गहरी नींदमें था कि उसने मेरी नाक पकड़ कर दबा दी, यह देखनेके लिए कि साँस रुकने पर बाबूजी छटपटाते हैं या नहीं। मैं जाग पड़ा। इस क्लेशमें पत्नीसे

सहानुभूतिकी आशा थी, पर जब क्रोधमें आ कर मैंने लल्लूको उल्लूका पट्ठा पुकारा तब वह बोली कि आप तो आज-कल अपने सम्बन्धमें घोर सत्यवादी होते जा रहे हैं। मैं चुप रह गया। उससे लड़ कर क्या पाता? खोपड़ीका बीमा भी तो नहीं कराया है।

ख़ैर, शाम हुई। छतपर जा कर आराम-कुरसीपर लेट रहा। लेकिन बीचमें वह आती रहती थी। जब-जब उसकी पग-ध्वनि सुनता था उठ कर टहलने लगता था। वह समझती है कि टहलनेसे खाना हज़म होता है। मेरी तो टहलनेसे भूख ही हज़म हो जाती है।

साढ़े-सात बजे मुंशी जी आयें। घोड़ेकी उन्हें ऐसी शह दी कि उनकी सारी चौकड़ी भूल गयी। रातमें भूख कम थी। स्त्रीने खानेको मना किया, इस लिये मैंने आज कुछ अधिक खा लिया। मैं हर बातमें उसका हुक्म नहीं मान सकता। लल्लू सो गया है, इससे अब संसारमें शान्ति है। दस बजने वाला है। मैं अपने

एक मूर्ख मित्रके कहनेसे आजका यह विवरण लिख रहा हूँ; और लिखकर अब सोने जा रहा हूँ।

साले साहब

जीजाजीकी आजकी जीवन-यात्रा कुछ झगड़ेके साथ आरम्भ हुई। नौ-का समय रहा होगा। मैं पीढ़ापर आसन जमाये दूध-जलेबी उड़ा रहा था। बड़ी बहन बड़े आदमीके यहाँ पड़ी हो तो भोजन-पानीका बढ़िया तार बैठता है।

इसी समय मैंने सुना कि लल्लूने कोई ऐसी शरारत की जिससे जीजा जीके घर्र-घोंमें बाधा पड़ी और उन्हें रोज़से कुछ जल्दी सबेरा हुआ मान लेना पड़ा। लल्लूकी जो कुछ शरारत रही हो उसमें जीजीका भी इशारा रहा हो तो अचम्भा नहीं, क्योंकि लल्लू जब मेरे सामने हँसता-बिहँसता आया तब उसके दोनों गालोंमें गुलाब-जामुन भर रहे थे।

जीजीके सुप्रबन्धमें दस बजे रसोई तैयार हो जाती है। जीजा जी स्नान इत्यादि लग़ों बातोंसे तड़फड़ निपट

कर दस बजते-बजते थालीके सामने एकाग्र चित्तसे डट गये। उनकी पालथीमें इस समय पृथ्वीके प्रति एक भारी सटत्वका भाव था और आँखोंमें आकुल गटकत्वका। फिर तो हमारे जीजा जी भोजनसे ऐसे भिड़े कि भूकम्प भी आते और जाते, पर वे अपने आसनसे न टस-मसाते। पक्का एक घंटा, अगर सवा नहीं, जीजा जी, थाली जी और रसोई जी तीनों एकमें गड्डमगड्डसे रहे।

पौने-ग्यारह क्या, पूरे ग्यारह तक कहीं जा कर जीजा जीको ऐसा भास होने लगा कि अब भोजन समाप्त होने वाला है, और सवा-ग्यारह तक सचमुच समाप्त हो गया। भोजनके बाद बारहसे चार तक का समय जीजा जी के लिए विशेष भारी पड़ता है। उस समय सामने कुँएपर स्त्रियाँ पानी भरने भी नहीं आतीं कि इसी बहाने वे अपनी आँखोंको खोल रक्खें। फिर भोजनके बाद जिसे परमात्माने बेकार बैठे रहनेकी सुविधा दी हो वह लेट क्यों न रहे। इसलिए जीजा जी लेट रहे, और फिर सो गए। तीन बजेके बाद

तक उनकी नाकसे निकलती हुई घर्रेकी ध्वनि ही उस 'झीने' प्राण-तन्तुका परिचय देती रही जिसके टूट जानेसे दुनियासे नाता टूट जाता है।

शामके समय कुरसीपर बैठ कर टहलनेकी ओर मन दौड़ाना—यही जीजा जीका व्यायाम जान पड़ता है। आज अपना यह व्यायाम उन्होंने छतपर आराम-कुरसी डलवा कर किया। मुझे तो ऐसा लगता है कि संध्याको देखते ही उनके ऊपर मीठी नींदका गुलाबी नशा चढ़ने लग जाता है।

जीजा जी सातके करीब छतसे नीचे उतरे। अगले दो घंटे शतरंज खेलने और दुम हिलानेमें कट गये। साढ़े-नौमें व्यालू करके वे चारपाईपर गये और जहाँ तक ज्ञात है रात भर के लिए ठण्डे हो गये।

इन खर्रोंके पढ़ डालनेपर सन्देहका कोई स्थान नहीं रह गया कि घासीराम जी सोनेके मामलेमें वास्तवमें

अति कर रहे थे । अतः घासीराम जीसे मुझे कहना पड़ा कि आप अधिक नहीं तो दिनको रात बनाना छोड़ दें। बहुत मीन-मेखके बाद वे बात मेरी मान गये और दिनका सोना उन्होंने तर्क कर दिया।

अगले कई दिनों तक समाचार मिलता रहा कि घासीराम जी अपनी बातके धनी हैं और दिनमें नहीं सो रहे हैं । अपनी सफलतापर मैं प्रसन्न हुआ और घासीराम जीकी पत्नीसे ख़ासी वाहवाही और अनेकानेक धन्यवादकी आशा करने लगा । पर उनसे जो मिला वह दो दिन बाद यह पत्र था——

'जिस कामका आपको शऊर नहीं उसमें आप क्यों हाथ डालते हैं ? क्या पतिदेवके सभी मित्र उन्हींकी तरह कम-अक़्ल हैं ? आपने उन्हें दिनमें सोनेको मना कर दिया है, फलतः अब वे दिन भर मेरे पास बैठे रहते हैं; न ख़ुद कुछ करते हैं न मुझे कुछ करने देते हैं। आपसे नाहक कहने गयी। मैं अब जान गयी कि आप पूरे अहमक़ हैं।'

दिग्गज द्वय

उनके शुभ नाम हैं पण्डित निपटनारायण और मुंशी छेदीलाल।

एक ब्राह्मण है, दूसरा कायस्थ; पर धुनके धनी होनेके अर्थमें दोनों धुनिया हैं। अपने-अपने अखाड़ेमें दोनों अक्खड़ हैं, अपने-अपने गढ़ेमें दोनों अगाध हैं। भगवानकी दया दोनोंपर है; भूँजी भाँग दोनोंके घर है,

दाल-रोटीसे दोनों दुरुस्त हैं । दुनियाकी ले-देसे दोनों दूर हैं, हमताकी हमाहमीसे दोनों शून्य हैं । और विद्वान् तो दोनों हैं ही ।

पं० निपटनारायणको इम्तेहानोंका इश्क है । कहीं-न-कहींसे, किसी-न-किसी विषयमें, कोई-न-कोई परीक्षा पास करते रहना ही उनके जीवनकी निष्ठा है । यही उनके सर्वस्वका सार है और एक इसी कार्य्यमें उन्हें अपनी साँसोंकी सार्थकता स्वीकार्य्य है ।

जिस वर्ष उन्हें कोई डिगरी या उपाधि नहीं मिलती उस वर्षको वे हुआ-हुआ सा मानते हैं । वे तेरह विषयके एम० ए० हैं और तीनके डाक्टर । इसके अतिरिक्त वे आयुर्व्वेदाचार्य्य हैं, ज्योतिषाचार्य्य हैं ; न्यायरत्न हैं, काव्यरत्न हैं ; वेदालंकार हैं, साहित्यालंकार हैं । पर कितने प्रकारके पुंगव, भास्कर, चूड़ामणि, महार्णव इत्यादि हैं इसकी पूरी उद्धरणी मेरे बूतेकी बात नहीं है ।

इस बहुमुखी पारङ्गतिका आदमी कैसा घटाटोप विद्वान होगा इसका बखान तो हो नहीं सकता, अनुमान हो सकता है। तमाम विद्याएँ जिसे कर-बदरी हों उसका फिर पूछना ही क्या !

सारा ज्ञान-विज्ञान उनके लिए खुला ख़ज़ाना था। जिधर हाथ मारते उधरसे जब जो चाहते उड़ा लाते।

अभी हालमें आँकड़ों द्वारा उन्होंने यह सिद्ध किया है कि भारतका सवा तीन मन सोना प्रतिवर्ष हिन्दू मुर्दोंके मुँहमें नष्ट हो जाया करता है। अन्य भारतीय विद्वान दूरकी कौड़ी लानेके फेरमें निकटका यह सोना अभी तक देख भी न पाये थे।

किसी भी विषयपर दो-चार सौ पेजोंकी थीसिस लिख डालना पं० निपटनारायण जीके बाँयें हाथका खेल है। मुझे अच्छी तरह याद है कि साढ़े-नौ फ़र्मेका उनका एक लेख मैंने इस विवेचनापर देखा था कि जलना शब्द जलसे नहीं निकला है।

बंगालकी एक विद्वन्मण्डलीने कोई पाँच हाथ लम्बी एक उपाधि उन्हें इस बातपर प्रदानकी है कि उन्होंने तानसेनको बँगाली साबित कर दिया है। ऐसे तो इस पक्षके समर्थनमें उन्होंने सैकड़ों तर्क उपस्थित किये हैं पर एक जो मेरी समझमें आ सका वह यह है कि चूंकि सेन-सान्याल सब बंगाली होते हैं इसलिए तानसेन भी अवश्य बंगाली रहे होंगे।

यह मैं कह चुका हूं कि पं० निपटनारायण जी आयुर्व्वेदाचार्य्य भी हैं। संसारको उनकी सबसे बड़ी देन चिकित्सा-शास्त्रके क्षेत्रमें ही है। उन्होंने बरसोंके हड़तोड़ परिश्रमके बाद सौ-पुटका रबड़-भस्म तैयार किया है। यह महारसायन है। चमत्कारकी बात इसमें यह है कि इसकी मात्राएँ पेटमें पहुँच कर रोगकी लघुता-गुरुताके अनुसार स्वयमेव घट-बढ़ लेती हैं। इसका अधिकार उन तमाम रोगोंपर है जो इन्द्रियोंके अनियंत्रित संचार-संकोच या खिचाव-तनावसे पैदा होते हैं।

पथ्य-पानीके मामलेमें रोगीका यथा-सम्भव मन रख सकना योग्य चिकित्सकोंका बहुत बड़ा गुण है। मुझे अपनी एक लम्बी बीमारीमें पूरी खानेकी इच्छा हुई। पं० निपटनारायणने बताया कि काड-लिवर-आयलका मोयन देकर कैस्टर-आयलमें छनी पूरियाँ अगर खाओ तो बल-कारक भी हों और हज़म भी हो जायँ।

यह नहीं है कि पं० निपटनारायण जी अपने ज्ञानकी गुदड़ीमें ही गेंडुरी मारे सदा पड़े रहें। कभी-कभार वे बाहर भी सर निकालते हैं, और अपनी धार्मिक अथवा सामाजिक योजनाओंसे संसारको चकित कर देते हैं।

एक योजना उनकी यह है कि चमड़ेके जूतोंके निमित्त होने वाली अपार पशु-हत्याको रोकनेके लिए एक सुदृढ़ संस्था बनायी जाय जिसका काम हो अचाम जूतोंका प्रचार, और नाम हो पावन-पनही-परिषद।

साम्प्रदायिक सद्भावनाके संवर्द्धनके लिए उनकी

योजना यह है कि देशके लोग विधानतः बाध्य किये जायँ कि अपनेको अलग-अलग हिन्दू, मुसलमान, किरस्तान न कह कर एकं शब्दमें हिन्मुकिर कहा करें।

पं० निपट नारायण जी अपनी इन सुन्दर योजनाओं-पर किसीसे भी दस-बीस घंटे बहस करनेको तैयार रहते हैं पर सामने कोई आता नहीं। उनसे बहसमें पार पाना मेढ़ेसे टक्कर लेना है।

उन्हें निरुत्तर होते केवल एक बार मैंने देखा है। वे गणितमें डाक्टरी ले कर घर लौटे थे कि उनके एक पड़ोसी मित्रने उन्हें बधाई देते हुए पूछा—'बड़े गणेतू बनते हो पंडित, यह बताओ तो जानें कि एक आदमी को पाँच लड़के तो पाँच आदमीको कितने ?'

पं० निपट नारायणकी गहराईको थहाना मेरे ऐसे दमचोरका काम नहीं है; फिर अभी मुझे लगे-हाथ मुं० छेदीलालको भी कुछ अभिनन्दन-पृष्ठ भेंट करने हैं।

मुं० छेदीलाल जी दूसरे साँचेके आदमी हैं । निपट नारायण जी जहाँ छै फीटके फैलावमें फिट होते हैं वहाँ

छेदीलाल जी कुल साढ़े-चार फीटमें ही ठप हो जाते हैं । उनकी सूरत, लोग कहते हैं, चंडूल-सी है; पर

मैंने चंडूल नहीं देखा है, इसलिए हाँ-ना मैं कुछ नहीं कर सकता।

उर्दू साहित्यमें उनकी चूड़ान्त गति है। उर्दूके बारेमें वह जो नहीं जानते वह उर्दू स्वयं अपने बारेमें नहीं जानती। मुझे जब उर्दू सीखनेका शौक़ चर्राया था तब मैंने उन्हींकी शिष्यता स्वीकार की थी। अफ़सोस है कि गो महीनों मैं बासी मुँह, उनके कहनेके अनुसार, उर्दका धोवन पीता रहा पर उर्दू मुझे न आयी, न आयी।

मु० छेदीलालने मुझे पढ़ाते समय उर्दू संज्ञाओंके बहुवचनपर बहुत ध्यान दिलाया था। अधिकांश तो मैं भूल गया हूँ, कुछ याद हैं—जैसे शरीफ़का शुरफ़ा, शेरका अशआर, आशिक़का उश्शाक़; और ऊँटका अमावट, चौकका उचक्का, जलेबीका जुल्लाब। उनका कहना था कि उर्दूमें कविका जमा कौवा होता है। उनका यह भी कहना था कि उर्दूमें चोंच शब्द जब मूर्खके अर्थमें प्रयुक्त होता है तब मूर्खताकी डिगरीके अनुसार उसके

चार बहुवचन होते हैं ; चोंचसे चवाँच, अचवाँच, चवाँचीन, अचवाँचीन ।

हमारे मुंशी जीने कुछ ऊपरी आमदनीका भी एक अच्छा ज़रिया निकाल लिया था । वे शायरोंको शायरीके ख़्याल बेचा करते थे । खरा पैसा लेकर जो उनके पास आता था वह खरी आइडिया पाकर ख़ुश लौटता था ।

अभी गत सप्ताह मेरे सामने उन्होंने श्री डबडब डेरापुरीको दस रुपयेमें ये आइडिया दिये—

ज़रा उसके इस ज़ुल्मको, इस सितमको तो देखिये कि

—पहले तो मेरी खाल खिँचवा कर अपनी चप्पलें बनवायीं,

—तब बजाय मलमलके मलाटका कफ़न मुझे दिया,

—और अब मेरे मज़ारपर बजाय दियाके ढिबरी जला रहा है ।

ख़ुद भी वे कविता करते थे, कम पर बड़े दम-ख़म

की। उनकी कवितामें उनका आपा बोलता था। नयी भाषा, नये भाव, नयी सजधज। बानगी देखिये—

बाग़में उसके गिरा मैं खाके ग़श फिर मर गया।
ख़ुश हुआ वह पाके पौदोंके लिए फोकटमें खाद॥
देख कर उस माहरूको हाथ फ़ौरन जोड़ता।
पर ज़रा खुजला रहा था मैं उन्हीं हाथोंसे दाद॥
ख़ून करते हो करो पर पान खाना सीख लो।
ताकि पीकोंमें रहे आती हमारी मौत याद॥
मेरे होठोंको चबा कर तैशसे बोला वह शोख़।
फिर लगोगे मुँह मेरे क्या यह मज़ा चखनेके बाद॥
जब डकारा खाके जूठन मैंने उस ज़ालिमके घर।
डरके आ लिपटा गलेसे उसने समझा सिंहनाद॥

धरम-धोंधों

— १ —

न चमड़ीकी ओरसे न दमड़ीकी ओरसे, आदमी मैं किसी ओरसे नहीं हूँ।

मैं डोम जातीका एक जीव हूँ——महा छी-छी और महा छूँछा।

मेरी यह कथा न तो गपोड़ा है, न खिल्लीबाजी। आपमें गुरदा हो तो इसकी सचावटमें अपने धरमका मुँह निहार लीजिये।

कम खाना, घमाघम खाना और गम खाना—यही मेरे जीवनका उक्का बुक्का तीन-तिलुक्का रहा है, और आगे भी सायद रहेगा।

एक बार इस जीवनके अँधियारे-घुपमें एक चर-दिनही चाँदनी जो छिटकी तो मैं टामसन साहबके बावरचीखानेमें नोकरी पा गया; और थोड़े ही समयमें ऐसा करतबी हो गया कि साहबने मुझे अपना हेड-बावरची बना लिया।

कलकत्तेके बाहर जहाँ वह रहता था, वहीं घीका एक अच्छा बड़ा कारखाना उसका था। बड़ा चोखा घी तैयार होता था। घिन्नी छाप घी या घिन्नी घीके नामसे बाजारमें हाथों-हाथ बिकता था।

अचरजकी बात लेकिन यह थी कि इस कारखानेके

पास न तो अपनी कोई डेअरी थी और न बाहर ही से बहुत दूध लिया जाता था; पर घी रोज मनों तैयार हो जाता था।

पहले तो मैं इसे साहबका इकबाल समझता रहा पर अंदरकी बात भी एक दिन ऊपर हो ही गई। संजोग ही कहिये, नहीं तो कारखानेके दो-एक घिसे-पिसे कारबारियोंको छोड़ किसीको इस फेरवटकी गंध तक न थी।

एक रोज साहबके लिए मैंने रातकी जो हाजिरी बनाई वह खास तौरसे अच्छी उतर गई। साहबने उस दिन खूब खाया और खानेके साथ बहुत-सी ढकोस भी गया।

खानेके बाद उसने मुझे अपने रूममें बुलवाया और कहा—'तू इतना अच्छा कुक है, तू ईसाई क्यों नहीं हो जाता? तेरा हिंदू धरम बिलकुल ढचर और ढकोसला

है। फिर तू तो डोम है, इस कमरेमें जैसे लतखोरा वैसे ही अपने धरममें तू।'

यह कह कर वह, कुछ सोचता हुआ, एकाएक हँस पड़ा और फिर बोला--'मैं आज बरसोंसे तेरे धरमकी गत बना रहा हूँ। मेरा घी तेरे तमाम ठाकुर-बाड़ियोंमें खपता है, तेरे बड़े-बड़े धरम-धुजी उसे खा कर चटकारे भरते हैं। पर वह बनता कैसे है--सुनेगा?'

मुझे हुँकारी भी नहीं भरनी पड़ी, नसेके हिलकोरेमें वह खुद ही सारा भेद भुगता ले गया।

मालूम यह पड़ा कि दमदमके पास साहबने एक और कारखाना खोल रक्खा था जहाँ, कुत्ते बिल्लीसे लेकर चूहे मेढक तक, जितने भी मुरदा जानवर कलकत्तेके कड़ेखानोंमें पड़े मिलते, बटोर कर भेज दिये जाते। कई ट्रक लासोंकी चलान, कलकत्ता और आसपाससे, उस कारखानेमें इसी तरह रोज पहुँचती। घोड़े, गदहे, गाय, भैंस जैसे बड़े मुरदार भी हिरफिरके

वहीं जा पटकाते । वहाँ इन सबकी चरबी खींच ली जाती और साफ करके यहाँ वाले कारखानेमें भेज दी जाती ।

यहाँ इस चरबीको थोड़े दूधके साथ मिला कर खूब औटा देते, और तब इसी दूधका माखन निकाल कर घी बना लेते ।

यही वह नामी घी था, घिन्नी छाप घी, जिससे मंदिरोंमें आरती सजती और भोग-पकवान बनता; बाभनोंका भोज और साधुओंका भंडारा होता ।

पर सबसे बढ़ कर भीतरी बात यह थी कि साहब कहने भरको मालिक था, असिलमें वह तनखाह पाता था और मनेजर था । उसकी इस धंधेमें बस दो आनेकी पत्ती थी, चौदह आनेका मालिक कोई एक हिंदू था जिसने ही सारा रुपैया लगाया था और अब गुप-चुप घर बैठा मुनाफा मार रहा था ।

यह सारा भरम साहबने बहुत टूटे-फूटे बोलोंमें

बताया था, और बात खतम करते-करते वह अंटा-गुड़गुड़ हो गया था।

दूसरे दिन साहबको यह तो नहीं याद रहा कि उसने रातको, नसेमें, अपने घीकी सारी छिपावट मेरे आगे उगिल दी थी; पर यह उसे याद रहा कि मुझे जैसे भी हो ईसाई बनाना ही था। उसे इसकी ढक जैसे लग गई थी।

मैं समझता भी था कि ईसाई हो जानेमें मेरा हर तरहसे पौ-बारह है, पर मेरे बूढ़े बप्पाने छुटपन ही में मुझे राम नाम सिखा दिया था और इस राम नामका मोह मुझसे छोड़े नहीं छुटता था। मैंने कोसिस करके देखा भी——जिस ढबसे रामका नाम जीभ पर ढँगलाता था, ईसूका नाम उस तरह नहीं।

पर साहब मुझे ईसाई बनानेपर कमर कसे था। जब एक दिन उसने कमरा बंद करके इसी लिए मुझे ठोंका भी तब उस समय तो, दबसठमें पड़ कर, मैंने हामी

भर दी पर दूसरे ही दिन में भाग कर कासी चला आया।

— २ —

लेकिन पेटने तो भगवानके तिरसूलपर भी साथ नहीं छोड़ा। इस पहड़ेको पाटनेके लिए मैंने कासी आ कर क्या-क्या करम नहीं किये। दस-बारह महीने तरह-तरहकी मजिहाई में कट भी गये, पर इस तरह आखिर सपरता तो कब तक।

अंतमें, सब ओरसे हार कर, मैं जीवटपर खेल गया और गरेमें जनेऊ डाल कर बाभन बन गया।

अपने और डोम-भाइयोंकी तरह मैं एक-दम डोम-कौआ नहीं था, बरन-बरन भी ऐसी बुरी नहीं थी। पोता-मट्टीका फटाका लगाकर और जनेऊ पहिन कर बाहर निकला तो लोगोंने पैलगी की। इसी भेसमें कई दफे तो साव-महाजनोंके घर बाभनोंकी पंगतमें घुस

कर बैठ रहा और माल चाभ आया । दच्छिना ऊपरसे मिली ।

धड़का अब खुल गया। मैंने सोचा कि बाभन बनना जब मेरे लिए इतना सहज है और जब पोने-पाथनेमें मैं पहले ही से इतना निपुन हूँ तब किसी सेठ-साहूकारके यहाँ यही काम क्यों न ओढ़ लूँ कि रोज कुआँ खोद कर पानी पीनेकी बलायसे बचूँ। मैंने यही किया। दो-एक दुआर देखनेके बाद सेठ चिरौंजी लालके यहाँ रसोईदारी मुझे मिल गई और मेरी परेत-बाधा कुछ दिनके लिए फिर दूर हुई ।

हमारे सेठ चिरौंजी लाल जी धरमके धक्काड़ थे पूरे । अपने इस देसमें भी, जहाँ चूल्हे तकमें धरमकी खेती होती है, उनके जोड़का धरम-धोरी खोजे न मिलता ।

क्या मजाल थी कि सेठ जी के देखते धरमकी नाकपर माछी तो बैठ जाय। जैसे हाथीका मद उसके

कानसे बहता है वैसे ही धरमका मद सेठ जी की बानीसे बहता था। राह चलते थे तो अपने सरीरसे जैसे धरमकी आँच फेंकते चलते थे।

धरमकी बातोंमें कोई जरा भी संका करता था तो वे उसे धरमकी सींगोंसे ही हुरपेट देते थे। बहुत-सा धरम तो सचमुच उन्हींके खूँटेके बलपर उछरता था। नगरमें धरमके नामपर कोई भी ढँढरच होता था तो वे उसके हरावलमें दिखाई पड़ते थे।

घरपर भी सेठ जी धरमका खटखटा सबकी दुममें खोंसे फिरते थे। धरमसे रत्ती भर तल-बिचल होने पर वे नोकरोंको तो दमदलेल कर डालते थे।

एक दिनकी बात है कि जब वे बागमें चिउँटियोंको आटा बाँट कर लौटे तब तक एक भूखे नोकरने पीछेसे जाकर वह सारा आटा बटोर लिया और टिकड़ी लगा कर खा गया। सेठ जी को मालुम हुआ तो उन्होंने

गुड़का एक खाली बोरा मँगवा कर चिउँटियोंके बिलके पास धरवा दिया। वे जब बोरेमें खूब भर गईं तब उस नोकरको नंगा करके उसमें गरे तक बाँध कर छोड़ दिया, और पक्का घंटा भर बाद बाहर निकाला —तब, जब वह अब-तब हो गया।

दो पेसियाँ तो मेरी भी इन कुछ महीनोंमें उनके सामने हो चुकी थीं। पहली बार तो मैं तरकारियोंके लिए काटनेका नाम लेते सुन लिया गया। मुझे बताया गया कि काटनेमें हिंसा नामकी एक चीज की धुनि आती है, इस कारन तरकारियोंके लिए इस बचनका बेवहार सेठजीके यहाँ मना था। उनके यहाँ तरकारियाँ काटी नहीं, सँवारी जाती थीं।

पर यह मेरी पहली खता थी, इस लिए इस बार तो रेरी-तेरीके बाद में छोड़ दिया गया।

दूसरी बार में आगको मुँहसे फूँकते देख लिया गया। मुंहकी फूंकसे सारी रसोई जूठी हो गई। इस

बार मेरी सात दिनकी तलब जुरबानेमें कट गई—इस धौंसके साथ कि फिर कोई चूक हुई तो निकाल बाहर हूँगा।

लेकिन तीसरी बार भी एक चूक आखिर हो ही गई, जिसके चक्करमें बड़े-बड़े चरित और बड़े-बड़े चरित्तर हो कर रहे।

एक रोज सट्टीमें मैंने, बे-मौसिमके, दो फूल गोभीके देखे जिन्हें मैं खरीदता आया कि मालिकको बना कर खिलाऊँगा तो वे खुस होंगे। पर खुस होनेको कौन कहे, उनके सामने थारी गई तो वे थारी पटक कर उठ गये।

उनके कमरेमें खड़े-दम मेरी तलबी हुई। मैं हिलता-काँपता वहाँ पहुँचा तो मैंने देखा कि मारे गुस्सेके चेहरा उनका चुकंदर हो रहा है। मुझे देखते ही मेरी ओर लपक पड़े और चिघरके बोले—'क्यों बे नालायक! आज चौकेमें गोभी कैसे आई?'

मैं हक्का-बक्का हो गया। गोभीमें ऐसा कौन-सा पाप

घुसा था जो वे इस कदर बम-भड़ाक हो रहे थे । मैंने हाथ जोड़ कर कहा—'सरकार ! मैं नहीं जानता था कि आप गोभीसे.........

'चुप रह, पाजी कहाँ का ! मैं गोभी खाऊँगा ? वह चीज जिसके आगे 'गो' अक्षर है ?'

ओ बाबा ! अब जा कर यह बात मेरी अकिलके बिचपटेमें समाई । कितनी भारी भूल मैंने की थी ! अपनी ओरसे तो मैं सेठ जी का परलोक बिगाड़ ही चुका था, वह तो कहिये वे अपने धरमके बली थे जो बच गये ।

मैं छमापनके लिए घिघिआनेको सोच ही रहा था कि एक नोकर इसी समय भीतर आया और एक अंगरेज-को वहाँ पहुँचा कर चला गया ।

सेठ जी ने उसे सामने कुरसी दिया और मुझे बाहर निकल जानेको कहा ।

मैं बाहर जा ही रहा था कि उस अंगरेजसे मेरी चार आँखें हुईं। अरे, यह तो टामसन साहब था। अब उसने भी मुझे पहचाना और पूछा—'तू यहाँ कैसे ?'

मैं तो चुप रहा, पर सेठ जी बोल उठे—'आप इसे जानते हैं क्या ? यह मेरा रसोइया है।'

'आपका रसोइया ? आपका रसोइया ? अजी सच कहिये, आपका रसोइया ? ओ माई गॉड !'—यह कह कर वह ठठा कर हँस पड़ा और इतना हँसा कि हँसते-हँसते दुहरा हो गया।

सेठ जी ने घबरा कर अब पूछा—'क्या बात है साहब, जो आप इतना हँस रहे हैं ?'

'बात यह है सेठ जी, कि यह शख्स मेरा बावरची रह चुका है, मैं इसे जानता हूँ, यह जातका डोम है।'

उनका रसोइया और जातका डोम ! यह बात सेठ जी के कानोंमें कड़कनाल-सी गूँज उठी। उनका चेहरा

देखनेके लिए इस समय टिकट लगाया जाता तो हजारोंकी रकम खड़ी हो जाती ।

दो मिनट तक तो वे अपने पैरोंपर डग-डग करते रहे, जैसे उनकी गुरिया-गुरियामें कँपनी बाई घुस गई हो; पर इसके बाद जब वे आगे बढ़े तब मेरे ऊपर टीलासे टूट पड़े । अपने पूरे बल-पौरुखसे उन्होंने मुझे धुँगारना सुरू किया । ऐसी धकड़-धुनाई मेरी कभी नहीं हुई थी ।

खूब ठठाया सेठ जी ने मुझे—जितना उनसे बन पड़ा उतना । जब हाथ-पैर उनके बिलकुल बोल गये तब हाँफते हुए अपने अस्थानपर वे जा बैठे ।

इसमें तो सक नहीं कि मारे पिटाईके मैं पटरा हो गया था, पर लात खाना और धूल झाड़ कर उठ जाना—यही मेरे कुलकी रीत है । मेरे बूढ़े बप्पाने मरते समय मुझे उपदेसा था कि बेटा, लात खाना तो खाना पर रोना मत—रोनेमें हमारे कुलकी हँसी-हँसारत है ।

वे ऐसे थे कि उन्हें जब जोर की मिठवाँस लगती तब वे किसी हलवाईकी दूकानके पास जा ढुकते और गौं पा कर चट एक थार उठा लेते । जब तक लोग हाँ-हाँ करें तब तक तो वे उस थारको दोनों बाहोंके भीतर

दबा कर और उसपर अपना मुँह सटा कर, वहीं जमीनपर ——गली हो या सड़क——औंधे पड़ रहते । पीठपर उनके नगाड़ा बजता रहता, घूँसा और लात और छड़ी और जूताकी बौछार होती रहती, पर वे नीचे पड़े मिठाई साफ करते रहते । जब पेट भर जाता तब थारी वहीं

छोड़के उठ खड़े होते, पीठकी धूल झाड़ते, मूँछोंपर ताव देते और हाथ झटकारके चल देते।

ऐसे बापका मैं बालक था। क्या हुआ जो आज चार लात बेसी लग गये!

इसी समय एक बात बहुत दूरकी मुझे सूझ भी गई। जान पड़ता है मारकी धमारने हो इतनी देर बाद उसे मेरे माथेमें चटका दिया, नहीं तो वही बात बहुत पहिले मुझे सूझनी चाहिये थी।

मेरा मन अब भीतरसे जगर-मगर करने लगा। अब तो मैं सेठको ऐसा महुअर खेलाऊँगा कि वह नाकके पैंड़े रुपया झरेगा।

मैं उठ बैठा। पर ऊपरसे अपने मुँहको लतियाउँझकी रसीद मैं बनाये रहा।

मुझे बैठा देख कर सेठ हाथमें कुछ रुपये लिये मेरे पास आया। उसने सोचा होगा कि इस डोमड़ेको कुछ

दे-दिला कर अब पुचकार लेना चाहिए, नहीं तो चारों ओर चिरायँध फैलायेगा कि मैं इसके हाथकी रोटी खाता था।

मैंने रुपये थाम लिये—गिने नहीं कितने थे, दो दसके नोट और काफी सिक्के थे—और वही रुपये मैंने उसके मुँहपर फेंक मारे।

मुझे अच्छी तरह याद है कि उनमेंसे एक रुपया तो उसके आगेके दाँतोंसे टकरा कर ठन-से बोला ; दूसरा नाककी नोकपर बैठा जहाँ एक गुमटा अब बनने ही वाला था।

'तेरी यह हिम्मत ? मेरे साथ यह गुस्ताखी ?'—लाल-लाल ढेंढर दिखाते हुए सेठने पूछा।

'हाँ, तेरे साथ।'—मैंने जबाब दिया—'नरकके उस कीड़ेके साथ जो घीके नामपर नरकका कीचड़ सबको खिला रहा है।'

यह सुनना था कि सेठका चेहरा फक् हो गया, मानों सब उसका नार-पोटा उसके मुँहमें आ गया हो।

साहब भी जैसे चौंधिया गया, पर अपनेको सँभाल कर उसने पूछा—'क्या मतलब तेरा ?'

'तू कौन होता है मतलब पूछने वाला ? तेरा मालिक क्यों नहीं बोलता जो यहाँ टंट-घंट बना कर धरमकी मूरत बना बैठा है पर जो गऊ तककी चरबी मिले हुए उस घिनौने घीको घिन्नी घीके नामसे बेच कर लाखों कमा चुका है और कमा रहा है।'

'यह सब तू क्या बक रहा है?'—सेठने अब पूछा।

'बक रहा हूँ ? और बिस्तारसे कहूँ ? कलकत्तेके कूड़े-खानेसे सुरू करूँ या दमदमके कारखाने से ?'

सेठने साहबकी ओर देखा और साहबने सेठकी ओर; दोनोंके चेहरोंपर हवाई उड़ रही थी। सेठ समझ गया कि उसकी चुंदी अब मेरे हाथमें थी। मैं

चाहता तो उसकी दुनियामें सलाई लगा देता । और साहब बहादुर तो सेठके साथ यों ही चापड़ हो जाते।

इसके बाद तो मेरा वह रंग जमा कि बस मैं ही मैं था। जब मेरा मनावन होने लगा और मैं भैया-बाबू पुकारा जाने लगा तब तो ऐसा मजा आया कि मैं क्या अरज करूँ ।

मैं चाहता तो सेठसे गोड़धरिया करा के छोड़ता, पर मैंने सोचा कि इसमें मेरी कौन बड़वारगी है। अपने बूढ़े बप्पाकी वह सुन्दर सीख मुझे याद पड़ गई कि बेटा, भूलना मत कि तुम डोम हो और डोम ही रहोगे, चाहे सवा-सौ होम करो और सवा-करोड़ ओम् जपो ।

फिर उस सेठकी धुरिया-मटिया करके मेरा कौन महात्म बढ़ जाता। मेरे एक पुरखाने राजा हरीचंदसे खिजमतगारी कराई तो डोम ही रहे, मैं इस सेठसे नकघिसनी कराता तो भी डोम ही रहता । मेरे ऐसे मलपंकी जीवके लिए इतना संतोख कम नहीं था

कि वह ऊँची नाक वाला लखपती मेरे आगे हाथ बाँधे हें-हें कर रहा था।

मुझे पाँच-सौ तो तुरत मिले और जिनगी भर के लिए घर बैठे पचास रुपये महिनवारीका ठहराव हुआ।

— — — — —

पर भगवानने मेरे भागमें जो भुस भर रक्खा था उसमें फिर आग लगी। बरिस भर भी चैनसे न कटे थे कि सेठ मर बिलाया और साहब बिलायत चला गया।

मैं अब फिर वही उठल्लूका चूल्हा हूँ जो पहिले था।

नाम-मंजरी

—१—

मेरा नाम मुन्ना, मेरी स्त्रीका नाम मुन्नी, मेरे लड़केका नाम मुन्नन है।

नामोंमें इस तरहकी कौटुम्बिक अभिन्नता बहुत कम देखनेमें आती है।

पर पिता और पुत्रके नामोंमें समन्वयका प्रयत्न अकसर देखने में आता है। धन्नीलाल वल्द रकमीलालमें, या तुलाराम वल्द जोखनराममें, जो गतानुगति है वह मात होती है तो बस घुरहू वल्द घुरबिनसे। इसमें घूर-परक प्रेमकी जो परम्परा है वह मनपर बरबस चड्ढी जमा लेती है।

संसारमें अगर किसीकी उन्नति किसीको अच्छी लगती है तो बेटेकी बापको। बेटा बापसे बढ़ जाय, यह सभी बेटे वाले बाप चाहते हैं। डेढ़ासिंह ज़रूर चाहेंगे कि उनका पुत्र अढ़ैयासिंह हो जाय। जब हम दुबरीके पुत्र बजरंगीको देखते हैं, या पनारूके पुत्र तिरबेनीको, तब इसी इच्छाका एक स्पष्ट संकेत हमें प्राप्त होता है।

भगवान भले ही केवल अन्तमें सुन्दरम् हो पर भाई-भाईका प्रेम तो सर्वदा सुन्दर है। लेकिन इस प्रेमका निर्वाह अधिकतर नामोंकी एकरूपतामें ही होकर रह जाता है। मैं दो नापित भाइयोंको जानता हूँ, एकका नाम

है हिलमिल--दूसरेका मिलजुल, जो अस्तुरेसे एक दूसरेकी नाक काटने उठे थे। मुँदरी और चुँदरी नामकी दो बहनोंमें ऐसी झोंटा-उपार लड़ाई होती है कि पास-पड़ोस वाले भी पस्त हो जाते हैं।

कवितामें तुकबन्दी छीछड़ेकी तरह त्याज्य है पर नामोंमें तुकबन्दी तो बेहूदगीकी हद है। अगर गनपत अपने तीन पुत्रोंके नाम सम्पत, महीपत और पानीपत रखता है तो इसमें सिवाय तुकबन्दीके और क्या तुक है ? यहाँ तक भी ग़नीमत है पर एक श्रीमान्‌जी तो बिलकुल बह गये थे जब उन्होंने अपने तीन पुत्रोंके नाम ज्ञान जी, प्रधान जी और चिम्पानजी रख दिये। इन लोगोंके आगे गोकुलको मैं माफ़ कर सकता हूँ जिसने अपने दो पुत्रोंके नाम नरकुल और तरकुल रक्खे थे। लोटन मालीकी तो बात भी नहीं चलानी चाहिए जिसने अपने पुत्रका नाम क्रोटन धर दिया था। हाँ, यह सुन कर आप प्रसन्न हो सकते हैं कि एक

रामायण-प्रेमीके तीन पुत्रोंके नाम हैं—अशरन शरन, भवभय हरन और कलिमल दहन।

—२—

मौलवी दीनयार ख़ाँ अपनी चारें बीबियों सहित जब शुद्ध किये गये, तब वे तो तत्काल ही दीनयारसे धर्ममित्र बना लिये गये, पर उनकी पत्नियोंके मुसलमानी नामोंपर सीधे-सादे अनुवादका यह उपचार न चल सका। जुम्मन, जुन्नो, हुब्बन और हसन्नाका हिन्दी रूपान्तर कोई करता भी तो क्या !

कोई बहुत ज़ोर मारता तो जुम्मनको सुकिया कर देता, पर यह तो वही बात होती जैसे बादशाहीकी हिन्दी रायता।

इस लिए उस समय तो यह प्रश्न अनिर्णीत छोड़ देना पड़ा, पर बादमें इसी कार्य्यपर पाँच मित्रोंकी एक कमेटी बैठानी पड़ी।

वहाँ यह सिद्धान्त स्थिर हुआ कि चूँकि उन मुसम्मातोंके

मुसलमानी नामोंको आधार नहीं बनाया जा सकता था इस लिए उनके गुणों और ख़सलतोंके आधारपर उनके नये नाम रक्खे जायँ। अतः कमेटीने धर्ममित्र जी को उनकी विशेषताओंपर प्रकाश डालनेका आदेश दिया।

धर्ममित्र जी ने बताया कि उनकी पहली पत्नीमें कोई विशेषता नहीं थी, सिवा इसके कि वह सबमें जेठी थी और सबपर जेठकी तरह तपती थी।

कमेटीको इतना संकेत काफ़ी था। उसका नाम ज्येष्ठा प्रस्तावित हुआ, जिसे धर्ममित्र जी ने तुरन्त स्वीकार कर लिया। सच पूछिये तो उन्हें पहली पत्नीके नामसे कोई दिलचस्पी थी भी नहीं; वह चालीसा पार कर चुकी थी।

उनकी दूसरी पत्नी, उनके कहनेके अनुसार, बड़ी आलसी थी। किसीने उसका नाम आयशाके तर्ज़पर आलसा 'प्रोपोज़' किया पर एक संशोधन द्वारा वह आलसासे मदालसा कर दिया गया।

तीसरी बड़ी ख़र्चीली थी। धर्ममित्र जी का कहना था कि वे उसके हाथपर जो कुछ भी रखते थे उसे वह तुरन्त फूँक-ताप कर बराबर कर देती थी। इस सूचना पर उसका नाम जब लोपामुद्रा सुझाया गया तब स्वयम् पतिदेवको भी यह नाम झट पसन्द आ गया।

पर चौथी पत्नीके नामकरणमें काफ़ी दिक्क़त दरपेश आयी। उसकी विशेषता यह थी कि वह बहुत शौकीन थी और सदा अतर-फुलेलमें बसी रहती थी। उसके लिए एक-से-एक विचित्र नाम प्रस्तावित हुए, जैसे गंधमादा, इत्रावती इत्यादि; पर वह धर्ममित्र जी की परम प्यारी पत्नी थी और ये सब नाम उन्हें ऐसे ही जान पड़े जैसे शंखका नाम पोंपों। उन्होंने मन-ही-मन कई काल्पनिक प्रेमालापोंमें इन नामोंको बारी-बारीसे बैठाया, पर वे बराबर उखड़ते गये।

अतः उन्होंने इन सब नामोंपर उँहु कर दिया। चौथा नाम कमेटी भी नहीं तय कर पायी।

अभी तक वे यह नहीं तय कर पाये हैं कि उनकी पत्नीका नाम फुलेलिका या सुगंधरा या क्या धरा जाय।

—३—

अँगरेज़ हमारे घरोंमें इतने दिनों तक घुसे रहे कि नामों तकमें हम उनकी भद्दी नक़ल करना सीख गये। हिन्दुस्तानी नामोंपर विलायती लुक चढ़ानेकी कुप्रवृत्ति उनके जानेपर भी हममें न्यूनाधिक बनी हुई है। कैसा तमाशा है कि शर्मा जी गुदड़ीसे एक हैट ख़रीद लाते हैं और शर्मासे Sherrmann हो जाते हैं; पाँड़े जी बीबीके पाँचापाड़से किनारी फाड़ कर एक बो बनवा लेते हैं और पाँडेसे Pawndye हो जाते हैं।

मैं एक ज़रूरी पत्र लिख रहा था कि मेरे पास एक विज़िटिंग कार्ड लाया गया। उसपर नाम था John. M. Allway। मैं हड़बड़ा कर नीचे उतरा कि देखूँ सात समुन्दर पारका कौन अँगरेज़ बच्चा मुझसे मिलने चला

आया है। पर वहाँ तो नूरे जुलाहाका लड़का जानू, पतलूनमें हाथ डाले और पाइप दगाये, मुझसे मिलनेके लिए खड़ा था; वही जो बचपनमें लँगोटी लगाये मेरे साथ कबड्डी खेला करता था। अब किसी सूती मिलका मैनेजर था, हजार-बारह सौ महीनेमें फटकारता था, और जानूसे जान मुहम्मद अलवी होकर John. M. Allway हो गया था।

आप अपने किसी मित्रकी प्रतिभा परखना चाहें तो हिन्दुस्तानी नामोंकी यह तालिका उनके आगे रख कर कहें कि इन नामोंका असली रूप ज़रा बूझें तो--

1--B. Joy. 2--A. Tosh. 3--N. Ham. 4--Pat Hock. 5--Shaw Perry. 6--Joyce Awl. 7-Huss Nally.

और जब वे सर पटक कर रह जायँ और न कह पायें तब आप दया करके बता दें कि ये नाम क्रमशः

हैं---बिजय, आशुतोष, नरसिंहम्, पाठक, शाहपुरी, जायसवाल और हसन अली।

—४—

आप शायद यह सम्भव न समझें कि इस भूमण्डलपर किसीका नाम भिम्भा प्रसाद भी हो सकता है, पर इस अद्भुत नामको धारण करने वाले सज्जनसे मैं आपको मिला सकता हूँ। वे वासिल-बाक़ी-नवीस हैं। उनके पिता हैं गुल्लू प्रसाद। घर ग्राम घमलौरमें है, ज़मीन्दार हैं बा० घुण्डीसिंह। बाउलराम गाँवके बनिया हैं, बकाउलराम पटवारी। चौकीदारका नाम है लुरखुर। दो पड़ोसी हैं दमकल दूबे और तिरपन तिवारी। गाँवमें घसीटे ख़ाँ नामका एक बकर-कसाब है, झोंकन नामका एक भडभूंजा है और दिउली नामकी एक घुड़चढ़ी भी है।

नामोंके सम्बन्धमें माँ-बापकी जो ज़िम्मेदारी है उस पर भी दो शब्द कहनेका प्रयोजन यहाँ आ पड़ा।

बच्चेका जिस समय नामकरण होता है उस समय वह अबोध रहता है, चें-में भले ही करता हो पर चीं-चपड़ नहीं कर सकता। उसे, उस दशामें, ऐसा नाम दे डालना जो आजीवन उसके लिए भार-स्वरूप हो जाय बहुत बड़ा अन्याय है। बहुतसे माता-पिता केवल नाम ही सन्तानको विरासतमें छोड़ जाते हैं; और वह भी अगर सिजल न हुआ, अनगढ़ और अजूबा हुआ, तो क्या रहा। आदमीके लिए भद्दा बुरा नाम वैसा ही है जैसा चौपायेके लिए अड़गोड़ा।

कितनी बड़ी नासमझी पं० सदानन्दने की थी जो अपने चिरंजीवका नाम उन्होंने सर्वानन्द रख दिया था। घरसे बाहर वह निकलता नहीं था कि चारों ओरसे उसके नामकी पुकार होने लगती थी——और सबको उसके नामका पूर्वार्द्ध ही प्रिय था।

श्रृंगार रस

कहते ज़रा झेप-सी लगती है कि श्रृंगार रससे मुझे अपार प्रेम है। श्रृंगार रससे प्रेम रखनेके मामलेमें मैं पुराना पापी हूँ। मेरी अपनी राय यह है कि श्रृंगार रसको बाद देनेपर कवितामें जो चीज़ बच रहती है वह शून्य न होते हुए भी शून्यके बराबर है।

शृंगार रस विषयक मेरे इस अनुरागके कारणकी जाँच कुछ घोर विद्वानों द्वारा करायी गयी थी। उस समय बड़े मारकेकी एक बात प्रकाशमें आयी। साबित हुआ कि मैं अश्लील हूँ, मेरा जीवन अश्लील है, मेरी चित्त-वृत्तियाँ अश्लील हैं, मेरे मनोव्यापार अश्लील हैं, मेरे हृदयके रेशे-रेशेमें अश्लीलता पैवस्त है।

अश्लीलता और शृंगार रसमें चोली-दामनका सम्बन्ध है—यह तो बहुत समयसे बहुत लोगोंको बहुत प्रकारसे मालूम है; पर मैं नहीं जानता था। जानता होता तो अब तक शृंगार रससे बचनेके लिए कोई टीका ले चुका होता।

लोगोंसे सुनते-सुनते इतना तो मैं भी अब मानने लगा हूँ कि पुरानी हिन्दी कवितामें शृंगार रसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वीर रस या शान्ति रस तो विद्या-क़सम बिलकुल है ही नहीं। अन्य रसोंके जोड़े-बटोरे इतने भी पन्ने न मिलेंगे कि उन्हें जला कर आँखोंके लिए आँजन बनाया जाय।

मैं यह भी मान गया हूँ कि अपने देशके इतने दिन ग़ुलाम बने रहनेका एक मात्र कारण था हिन्दीमें शृंगार रसकी एकमात्रता। देखिये अँगरेज़ीमें शृंगार रस है ही नहीं। कहा जाता है कि शेक्सपियरने अपनी क़ब्रपर खड़े होकर क़सम खायी थी कि वह शृंगार रससे कभी कोई वास्ता न रक्खेगा।

बायरनने तो पचास रुपया प्लस खाना और कपड़ा पर एक नोकर महज़ इस लिए रख छोड़ा था कि वह उनके पीछे उनके कान पकड़े सदा खड़ा रहे, जिसमें वे भूल कर भी कोई शृंगारिक कविता न कर सकें।

सारांश यह कि अँगरेज़ीमें शृंगार रस नामकी कोई चीज़ नामके लिए भी नहीं है। जो है वह विशुद्ध वीर रस है। यही कारण है कि आज दिन भी अँगरेज़ अधिकतर मुछमुण्डे होते हुए मूँछोंपर ताव दिये घूमते हैं। और एक हम हैं जिनकी भाषामें मूँछ शब्द ही स्त्रीलिङ्ग है।

और भी देखिये । ज़ूलू, ज़रबा, ज़िगज़िग, ज़ोरम, ज़ेनडिग आदि तमाम समृद्ध भाषाओंमें केवल प्रकृति-निरीक्षण सम्बन्धी कविताएँ हैं । पश्तू, पशमन, पिल-किश आदिके पद्य-साहित्यमें केवल मारफ़तकी बातें हैं । कमबख़्त हिन्दी ही एक ऐसी है जिसमें शृंगार रसकी रचनाएँ भी पायी जाती हैं ।

यह सब जानता हूँ, मानता हूँ, फिर भी शृंगार रसके लिए इस दिलमें एक 'कोमल कोना' बना ही रहता है । यह मैं समझ सकता हूँ कि शृंगार रसके साथ अश्लीलताका आ जाना अस्वाभाविक नहीं है, जैसे दही जमाते समय दूधका फट जाना असम्भव नहीं है । पर शृंगार रसके प्रेमीको अश्लीलताका पुजारी होना क्यों ज़रूरी है यह मेरी समझमें नहीं आता । काजल आँजनेका यह अर्थ तो कभी नहीं होता कि कजरौटेसे अपनी आँख फोड़ ली जाय ।

जो कुछ हो अब इस समय तो अपने रामको शृंगार

रससे प्रत्यक्षतः कोई वास्ता है नहीं। कुछ साहित्यिक मित्रोंने एक दिन ज़मीनपर मुझे दे मारा और छातीपर बैठ कर वादा कराया कि श्रृंगार रसका कभी नाम न लेना। अपनी बुद्धि कुछ ऐसी कच्ची है कि अपने वादेका मैं बड़ा पक्का हूँ। अब मैं श्रृंगार रस ही क्यों, श्रृंगारकी चीज़ों तक का विरोधी हूँ। अधिक क्या कहूँ, घरके सारे ज़ेवर इसी लिए बेच कर खा गया हूँ।

पर दिल्लगी देखिये कि जिन साहित्यिक मित्रोंने मुझे दे मारा था उन्हींके मुखिया पं० खूबचन्द इस श्रृंगार रससे अपनी रक्षा न कर सके; उन ऐसे कवि-कुल-पेशवाको भी इसने ऐसा पछाड़ा कि वे मिट्टी सूँघने लगे। चीज़ ही ऐसी है, न जाने कितने लोगोंकी इसने पगड़ी उछाली है। दिक्कत तो यह है कि जब तक आप इससे ज़रा भी सचेत हों तब तक काफ़ी अचेत हो चुके रहते हैं। लेकिन पहले सुन लिया जाय कि कविवर पं० खूबचन्द जी के साथ क्या दुर्घटना घटी।

एक दिन सुबह साढ़े छै बजे वे घरसे टहलनेके लिए निकले । टहलते-टहलते नदीके किनारे उस घाटकी ओर निकल गये जिधर एक धोबिन कपड़े पछार रही थी ।

संयोग ऐसा कि वह थी रूपवती । एक तो भोरका समय, दूसरे नदीका किनारा, तिसपर कविका हृदय, फिर सामने स्वास्थ्य और यौवनकी वह साकार माधुरी । सब मिल कर कुछ ऐसा रस-परिपाक हुआ कि बेचारे

पं० खूबचन्द जी का मन पीपर-पात-सरिस डोल उठा, और उनके मुँहसे सहसा निकल गया--

अहा ! महा सुन्दर तू धोबिन
नदी किनारे शोभित।
तुझे देख तुझपर मेरा मन
हुआ अचानक लोभित ॥

इतना कहते-कहते वे उसके बिल्कुल निकट पहुँच गये। अपने पास एक अजनबीको खड़ा देख उसे बुरा लगा या क्या हुआ कि वह और भी लगनके साथ कपड़े पछारने लगी। कविसे न रहा गया, वह बोला--

उस मैले कपड़ेको क्या तू
समझी हृदय हमारा।
जो उसको इस निर्दयतासे
पत्थरपर दे मारा ॥

इतना कह कर कविने जो ग़ौर किया तो उसे यह अवस्था अत्यन्त असम और असामान्य सी जान पड़ी कि एक पक्ष तो कविता-पाठ करे और दूसरा पक्ष कपड़े

पछारता रहे। इस अवस्थाका अन्त करना आवश्यक था; इसलिए कविने कहा—

रुक जा, थम जा, तनिक ठहर जा
दम ले ले, सुसता ले।
मेरी कवितापर तू बाले
मन चाहे मुसका ले ।।

पर उत्तरके नाते कविको उधरसे एक पुचकार भी न मिली। वह अपना हृदय निछावर कर चुका था, पर उसने देखा कि मूक वेदनासे यह मामला हल नहीं होने का। अपने मनकी व्यथा उसे साफ़-साफ़ कहनी पड़ेगी। यह सोच कर उसने कहा—

एँड़ी तक तू जलमें डूबी
सुमुखि सलोनी रे सखि।
हियमें मेरे फटी बिवाई
पग तेरे भींगे लखि ।।

इसी समय कविको यकायक अपने एक भूले हुए कर्त्तव्यका ध्यान हो आया। जिस नायिकाका मन वह

अपनी ओर खींचना चाहता है उसके रूपकी प्रशंसामें अभी तक उसने कुछ नहीं कहा । ऐसी ग़लती उससे क्यों हुई ? ख़ैर अब सही । उसने कहा--

दीरघ दृग तेरे अनियारे
जिन्हें देख मृग झेंपै ।
किसने कलफ किया है तेरे
इस चिकने चमड़ेपै ।।

यह तो कविकी पैनी दृष्टिसे छिपा नहीं था कि वह अविवाहिता है ; पर शायद अज्ञात-यौवना भी है--कविको अब यह सन्देह होने लगा । लेकिन जो कुछ भी हो, अब पीछे क्या हटना । कविने पूछा--

है तू अभी कुँवारी कह दे
कैसा दुलहा लेगी ।
बड़े चोजसे जिसे रोज तू
दाढ़ी-जार कंहेगी ।।

अब भी कोई उत्तर न पा कर कविको ज़रा चिन्ता होने लगी । अभी तकका उसका अनुभव यही था कि

लोग उसकी कविता सुन कर या तो हँस दिया करते थे, या रो पड़ते थे; पर यह धोबिन न हँसी, न रोयी। उसने कविकी ओर दो-एक बार आँखें उठा कर देखा ज़रूर, पर इस तरह जैसे वह उसे कोई गंदा-सा गुबरैला समझ रही हो। कविने ताड़ लिया कि अब इस घूमघुमारेसे काम नहीं चलेगा। उसे अपना आशय असंदिग्ध और अविलम्ब प्रकट कर देना होगा; फिर जो बदा हो सो हो। आशा और निराशाका कन्दुक वह कब तक बना रहता। उसने कहा--

जात-पाँतका बन्धन तोड़ूँ
इसमें क्या बदरोबी।
रजकनन्दिनी तेरे कारन
मैं भी हूँगा धोबी।।

जान पड़ता है कि यह धोबिन अज्ञात-यौवना होते हुए भी अपना नफ़ा-नुक़सान समझती थी और अपना जीवन किसी कविके साथ नत्थी करके अपना भविष्य

नहीं बिगाड़ना चाहती थी । उसने हमारे कविको 'कोरा' जवाब देते हुए कहा कि आप फ़ौरन यहाँसे खसकिये, नहीं तो मैं आप ही को 'धोना' शुरू करती हूँ ।

इस उत्तरने कविके सारे उत्साहपर पानी फेर दिया । दिलपर सिल रख कर वह वहाँसे चला । चलते समय उसकी अन्तिम प्रार्थना यह थी——

जरा पीठ मेरी सहला दे
इसमें कौन कसाला ।
मुझे समझ कर दम भर
अपना गदहा लादीवाला ।।

शैली-सर्वस्व

शंकर डमरू बजाते हैं, अक्षर निकल पड़ते हैं। लेखक गाल बजाते हैं, शैलियाँ निकल पड़ती हैं।

शैलीपर समर्थ लेखकको ऐसा अधिकार होना ही चाहिए कि जो कुछ उसकी लेखनीसे निकल जाय एक शैली बन जाय।

एक शैली मैंने देखी जो सेठ जी की थैली थी—मुँहकी बन्द पर खनखनाती हुई।

दूसरी शैली मैंने देखी जो जलकी ठिलिया थी—काफ़ी ख़ाली पर छलकती हुई।

श्री बतासराय जी एक प्रसिद्ध शैलीकार हैं। उनका एक परम शैलीवान् लेख मैंने देखा। सारा लेख बातका वह बतंगड़ था मानों मेंडकको बिठानेके लिए मेघडम्बर ताना गया हो।

कई शैलियाँ तो अपने पोलके बलपर ही ढोलकी तरह बोल लेती हैं।

पर शैली कहते किसे हैं? इसकी वृत्ति, इसका वार्त्तिक, इसकी व्याख्या क्या है?

दो-टूक भाषामें यों समझिये—जब तक भावके अभावमें वाक्य स्वयम् अवाक् न हो जायँ तब

तक शब्दोंके सभी सम्भव न्यास और रूप शैली कहे जायँगे।

— — — — —

अनादि बटे अनन्त—भगवान् । आसमान बटे जहन्नुम—उसकी माया । शरीर केवल बटेकी लकीर। जीवन एक भिन्न, जीव एक अभिन्न । आप्त, व्याप्त और सदा असमाप्त। पंछी फुर तो पिंजरा चुरमुर। अथ-इति दो काल-सर्प । मुख में दुम पारस्परिक। अपरम्पार परम्परित।

— — — — —

पर इन ज्ञान-भरी ख़ाली बातोंमें क्या धरा है ? बहुत-सा ज्ञान तो सचमुच झूठ-मूठकी बकवास है ।

कभीकी अभी क्यों सोचना ? आगेकी पीछे देखी जायगी। चिन्ताको दूरके पास फेंक रखिये, नहीं तो वह पट आपको चित करके यों ज़मीन दिखायेगी कि आसमान दिख जायगा।

यह संसार तो एक प्रहसन है--आते-जाइये और चल-बसिये का। देखिये न, कल जो हैं थे आज वही थे हैं।

— — — — —

ज्ञान तो मैं भी बघारूँ--दो चुटकी धूर, दसों दिसा पूर; टूट गई डोरी, फिर क्या काली क्या गोरी। पर पेटकी ज्वालामें सारा ज्ञान भस्म--वज्रागिन दावागिन कैसी या कैसी बड़वागिन, सबकी दादी सबकी नानी यह जुलमी जठरागिन।

इस लिए यह कह देना तो आसान है कि-- जगत सत्य हो या हो सपना, तू अपना तो करतब कर ले; घट का डब्बू रट का ढपना, रामनामका लड्डू भर ले। पर तत्वकी बात यही है कि--घिउ-खिचड़ी आलू कै भुरता, एकौ जून रहै जो जुरता; रामनाम तब भज ले प्यारे, तज के दर-दरकी दुरदुरता।

लेकिन हम आदमजादोंकी हरमजदगी ऐसी है कि–– पेट भरै जब टैयाँ-टैयाँ, हम हैं ऊपर तरे गुसैयाँ। और तब होता यह है कि–– चंद छुए तारा छुए, छुए खुदाका नूर; अन्त जा गिरे घूरपै, फाँके मुँह भर धूर।

फिर तो क़िस्मतके नामपर हाय-हाय होने लगती है–– ए री किस्मत ओ री किस्मत, तू मुझसे यूँ रिस मत; पथके पत्थरपर हत्यारी तू मेरे कूँ घिस मत।

— — — — —

पर कि़स्मतको राहे-ठिकस्तपर लाना है तो उसी ताकक्तिकी पूजस्तिश करिये जिसकी मुश्तीमें किस्मत भी है।

लेकिन उसीके भरोसे गफ़लत-ग्रस्त पड़े रहना और हसब-आवश्यकता हाथ पैर न जुम्बिशाना ऐसी

जाहिलता है जिससे हालत अभी बद है तो बदतर होती हुई बदतम हो जायगी।

हत-हिम्मती हमारा दुश्मन है। बिना उसे त्याग किये कामयाबिताके पथ्राहपर पेशडगी कर सकना मुशठिन ही क्यों ग़ैर-सम्भव भी समझिये।

— — — — —

हिम्मत हो, हिकमत हो, तो हम हिमालयको हिला कर हुलिया बिगाड़ दें। हातिम वह है, हिम्मती वह है जो बिना हाय-हल्लाके, बिना हड़बड़-हड़कम्पके, बिना हिक्का-हिचकीके; हूब और हियावके साथ, हुलास और हौसलेके साथ, हेंकड़ी और हुँकारके साथ; सारी हौल-हलाकानीको हटकता-हटाता हुआ हियेकी हिलगी हठात् हासिल करता है।

सौभाग्य सुवरन है तो साहस सुहागा। साहसी सोहर गावे या सोहिनी, सोहारी आरोगें या सोहन-

हलुवा, चाहे सोरह सुराहियोंकी सुरा ही सुरक डाले, उसके वास्ते सब सही है । साहस सिंहोंपर हँसता है, साहस सिंहासनोंपर हँसता है, साहस सिंहासनासीनोंपर हँसता है ।

— — — — —

जो घरमें घामड़ हैं, बाहर बाँगड़ू हैं, हर जगह हरबोंग हैं—यह दुनी उनके लिए कभी नहीं बनी है । यहाँ गबरगंडोका और लड़बावरोंका जीना अजीना है ।

वे रँडहो-पुतहो लड़ेंगे, डँहको-पँहको रोवेंगे, टल्ले-नवीसीकी साँस लेंगे, टुकड़गदाईका दम भरेंगे । भूतका भकाऊँ उनके पीछे चले है, आगमका गोगो आगे ।

— — — — —

कितना अनुग्रह, अनुकम्पा और अनुक्रोश उस परमात्मा, परमेश्वर और परमपिताका है कि आप ऐसे नहीं हैं । सकल, समस्त और समग्र अच्छे गुण

आपमें सदा, सर्वदा और सदैव व्यक्तमान, विद्यमान और वर्त्तमान रहते हैं ।

सबसे उत्तम, उम्दा और उत्कृष्ट बात तो यह है कि आपको जो भी सफलता, साफल्य या सफलीभूति इच्छित, इष्ट या ईप्सित होती है उसे पानेके लिए आपमें ढंग, ढोंग और ढकोसला भी प्रभूत, प्रगाढ़ और प्रचुर मात्रामें है। ये सब अतीव, अतिशय और अत्यन्त प्रसन्नताकी बात, वस्तु और विषय हैं ।

— — — — —

जिस ब्रह्माने आपको बनाया है उसे खँचियों धन्य-वाद दीजिये । वह आपको कमण्डलों अशीर्वाद देगा । आपके घरमें कुप्पों दूध, क़राबों दही, बोरियों घी, परातों इत्र, कुठिलों कपड़े और कण्डालों करेंसी नोट भरे रहेंगे ।

उसकी कृपासे आपको कई मण्डी लुगाइयाँ मिलेंगी और कई यतीमख़ाने बच्चे होंगे ।

— — — — —

यह सब लिखते मेरा ध्यान तब भंग हुआ जब सम्मुख चट्टीके चौरा पर वाष्पयानने शोत्री दी। मणिबंधकी समयसूचिकामें देखा तो संध्याके षट्-वादनकी बेला थी। राजपथोंपर और पण्यवीथियोंमें ज्योतिर्मन्दिर जलाये जा रहे थे। मैं उठ बैठा। पासमें एक क्षुधाशान्त्यालय है। वहाँ जेबसे श्रीनिकेतन निकाल कर चार आने प्रक्षिप्त किये और दो कूपिका चाय पी कर नगरपालिकाकी हवाखोरिकामें दूर्वादरी-पर जा लेटा, और दीपशलाकासे धूम्रिका जला कर पीने लगा।

— — — — —

इसी समय शैली सम्बन्धी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात मुझे सिगरेटके धुँएमें दिखायी दे गयी। उसे मैं कलमबंद करके सदाके लिए सुरक्षित कर देना चाहता हूँ। तूल न देकर थोड़ेमें कहूँ तो वह बात यह है कि—

एक मेरी शैली तो श्रीखण्ड सी है, शेष सबकी शिला-खण्ड सी।

तीन पुराने

महाराज रासोका नाम भला कौन नहीं जानता। दिल्लीश्वरोंमें भी ऐसा दबंग दूसरा नहीं हुआ। यही महाराज रासो पृथ्वीका राज विजय करके लौटे थे, जब पृथ्वीराजरासो नामक महाकाव्य बना था।

इसके रचयिता महाकवि चन्दबरदाई अपने प्रारम्भिक जीवनमें बिलकुल पिलपिल प्रकृतिके पलँग-

प्रेमी जीव थे। वे इस संसारमें केवल सोनेको सोना समझते थे, शेषको सिकता। कविता करनेके तो नामसे उन्हें जूड़ी आती थी।

पहले तो कुछ दिनों तक महाराज रासोने तरह दिया, पर अन्ततोगत्वा उन्होंने देखा कि बिना कान गरमाये यह शख़्स राहपर नहीं आने का। लेकिन महाराजमें पुराने युगके मालिकोंका सौजन्य था, वज़ेदारी थी। वे चन्दबरदाईपर फ़ौरन बरख़ास्तगीका डंडा लेकर बरस नहीं पड़े। कविको अपने पास बुलाकर, नरमीसे प्रसङ्ग छेड़कर, धीरे-धीरे कड़े पड़ते हुए अपना अन्तिम अपेल निर्णय इन साफ़ शब्दोंमें उन्होंने धमक दिया—

रे मतिमन्द चन्द बरदाई।
लेत फिरै अँगड़ाई मूरख करै न कछु कविताई॥
हर पहली को तलब उगाहै रुपया-आना-पाई।
लिखी न इक चौपाई कबहूँ यह कैसी अधमाई॥
मास दिवसमें करै न कछु यदि कविता क्राउन-डिमाई।
औरस नहीं अगर घर तेरा चौरस दूँ न कराई॥

यह चेतावनी मिलनी थी कि चंदके पैरों तलेसे धरती खिसक गयी और वे चिन्ताके गहरे गर्त्तमें लुंडमुंड जा गिरे।

सौभाग्यसे उनकी स्त्री बड़ी समझदार और बड़ी पति-परायणा थी। वह उन्हें परम-पति पुकारती थी, जैसे लोग परमात्माको परम-पिता पुकारते हैं। उन्हें उदास देख कर उसने पूछा—'ऐ मेरे परम-पति! आपका श्रीमुख आज श्रीफलकी तरह क्यों लटका हुआ है?'

'ऐ मेरी पद-रज!'—चंदने उत्तर दिया—'आज महाराजने मुझे एक महाकाव्य लिखनेका आदेश दिया है। यहाँ मेरे मस्तिष्कको साँप सूँघ गया है, एक अक्षर लिखना अक्षौहिणीसे लड़ना जान पड़ता है। पर तू स्त्रीकी जात, इन बातोंको भला क्या समझेगी।'

'बस इतना समझूँगी कि ऐसी स्थितिमें या तो अब एक स्त्रीको, यानी माता सरस्वतीको जप-तपसे

प्रसन्न करिये; नहीं तो एक दूसरी स्त्रीके, यानी अपनी नानीके नाम रोते रहिये।'

चंदने देखा कि वह बात टाँकेटूक कह रही है। अब दैवी अवलम्ब प्राप्त किये बिना उनकी दुनिया उनके सरपर भहरा पड़ेगी। और वे तलपट हो जायँगे। लेकिन स्त्रीकी सम्मति अक्षरशः मान लेनेमें उनकी हजो थी, हतक थी। अतः उन्होंने सरस्वतीके स्थानपर गजाननको प्रसन्न करनेकी ठानी। उन्होंने सुना था कि गणेश भी अपने उपासकोंको विद्या-बुद्धि बाँटते रहते हैं।

गणेशजीके मन्दिरमें चंद जा कर बैठ गये और सात दिन तक बैठे रह गये। घोर तपस्या उन्होंने की। रोज़ सिर्फ़ एक पैसेका पेड़ा खा कर रह जाते थे। ख़ैरियत थी कि उन दिनों दो पैसेमें सेर भर पेड़ा मिलता था।

आठवें दिन गणेशजीने हार मान ली और खिजला कर बोले—

गया हूँ अब तुझसे मैं ऊब ।
करि न सकै कविता यदि मूरख जा गंगामें डूब ।।
क्या कविताकी घुट्टी दूँ मैं डारि गलेमें ट्यूब ।
या मारूँ दो लात पीठपै निकलै कविता-कूब ।।
पिण्ड छोड़, ले खा ले मेरे आगेकी सब दूब ।
इसके बलसे कलसे कविता खूब करैगा खूब ।।

चन्द ने यही किया । मन्दिरमें उस समय जितनी दूब दिखायी दी उन्होंने सब बटोर ली । उसका

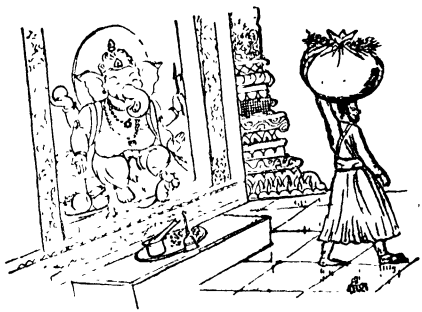

बोझ बाँध कर उन्होंने सरपर उठाया और घर आये । रात भर जाग कर वे सारी दूब खा गये ।

दूसरे दिन उनकी कलमसे कविता यों टपकने लगी जैसे ओलतीसे बरसाती पानी टपकता है । पुस्तक देखते-

देखते तैयार हो गयी। उसे लेकर वे हँसी-खुशी रासोके पास पहुँचे। झुक कर उन्होंने राजाकी जुहार की और कहते भये——

है पुस्तक तैयार महाप्रभु है पुस्तक तैयार।
दो मेरा उपहार——न हो पल्ले तो माँगि उधार।।
रासो नाम तुम्हार महाप्रभु चन्दा नाम हमार।
जुग-जुग दूनों नाम जगतकी जिह्वापै असवार।।
लो पुस्तक छपवाय महाप्रभु दूँ सर्वस अधिकार।
बीस सैकड़े कम-से-कम के हम हर दम हकदार।।

महाराज रासोने पुस्तक उलट-पुलट कर देखी। उसकी जिल्द उन्हें बहुत पसन्द आयी। अन्तमें समाप्त भी बड़े सुन्दर अक्षरोंमें लिखा हुआ था।

महाराज प्रसन्न हो गये। उन्होंने अपने कानमें से इत्रका फाहा निकाल कर कविकी नाकपर रगड़ दिया और कहा——'रे चन्द! मैं आज्ञा-पत्र लिख देता हूँ कि अब आजसे तुझे कविता करते समय पीनेके लिए दो बंडल बीड़ी मेरे यहाँसे नित्य मिला करेगी।'

साहित्यके इतिहाससे सम्बन्ध रखने वाले इसी तरहके अनेक प्रकरण हैं जिनपर अभी तक सम्यक प्रकाश नहीं पड़ा है। खानखाना रहीमके ही जीवन-कालकी एक घटना लीजिये। यह तो सभी जानते हैं कि वे अकबरके नवरत्नोंमें थे पर यह कम लोग जानते हैं कि अपनी नवरत्नीसे समय निकाल कर वे नित्य एक घंटा दिल्लीके दीन-इलाही कालेजमें ऊँचे दर्जोंको पिंगल पढ़ा दिया करते थे। वहीं एक सुन्दर छात्रा उन्हें देखनेमें आयी जो सदा रोआँसी बनी उसासें भरा करती थी। पूछताछ करनेपर पता चला कि उसका पति महीनोंसे काबुलकी ओर लामपर गया हुआ था। यह जानना था कि रहीमने उस छात्राको एक विरहिणीके रूपमें देखना शुरू किया। तब उनके लिए यह भी आवश्यक हो गया कि उसके ऊपर कुछ कविता गाँठी जाय। वह विरहिणी कैसी जिसके ऊपर कोई कुशल कवि कलम न उठाये! संयोगसे उन्हीं दिनों

रहीम बरवै-नायिका-भेद पर हाथ माँज भी रहे थे । अतः उन्होंने लिखा—

अजगुति आजु अलोकिक एक लखात ।
जलद भये वे लोचन थे जलजात ।।
ग्रंथ लिये कर देखति देखि परै न ।
मारि रहे झख ज्यों वे झखसे नैन ।।
तिय हिय पियकी मूरति अमिय समान ।
बिष-बियोगसों केहुँ बिधि राखत प्रान ।।
जब-जब वह सुधि आवत सब सुधि जात ।
पोर-पोर बिरहागिन अस अधिकात ।।
धरि अँगुरी बरजोरनि औचक आय ।
सहपाठी सठ सिगरेट लें सुलगाय ।।

कहना न होगा कि रहीमकी इसी बातपर एक कविको आगे चल कर ‘ छातीसे छुआय दिया बाती ’ जला लेनेकी सूझी थी ।

अकबरने ये बरवै सुने तो उन्हें भी अज़हद पसंद आये । उन्होंने रहीमकी दाढ़ीपर हाथ फेरा और शाही

चाट-हाउस में भेज कर उन्हें बताशे, बैंगनी और बड़े खिलवाये ।

ऐसी ही कितनी बातें कितने कवियोंके सम्बन्धमें हैं, कहाँ तक कोई कहे । एक नमूना और नमूदार करके अब बस करता हूँ ।

जग जानता है कि चौबे बिहारी लाल जयपुर-जनेश महाराज जयसिंहके दरबारी कवि थे । यों तो मुख्य काम उनके ज़िम्मे यह था कि महाराजको नवोढ़ा पत्नियोंका चपरगट्टू बननेसे बचाते रहना ; और इस कामका अंजाम वे 'नहिं पराग नहिं मधुर मधु' इत्यादि

गा कर बख़ूबी दे लेते थे। पर इसके अतिरिक्त भी वे सभी उपयुक्त अवसरोंपर अपनी महत्वपूर्ण सेवाएँ महाराजको अर्पित करते रहते थे। एक उदाहरण पर्य्याप्त होगा।

जयसिंहको बाघके शिकारका बड़ा शौक़ था। एक दिन फाल्गुनके महीनेमें वे शिकारके लिए जंगलमें गये। साथमें बिहारी भी थे। उस दिन महाराज दिन भर जंगलकी ख़ाक छानते रहे पर एक भी बाघ हाथ न लगा। शाम होते-होते वे हार कर एक ढूहेपर बैठ रहे।

दिन भरकी असफलतासे कटकटाया हुआ कोई भुआल सामने एक वेतनभोगी कविको पा कर उसपर अपना झल न उतारता तो किसपर उतारता। सो जयसिंह भी बिहारीपर यों फट पड़े—'बड़े कवि बनते हो बच्चू, मुझे सूधा पा कर रनिवाससे निकाल लाते हो, जंगलसे एक बाघ निकालो तो जानूँ।'

इस मौक़ेपर बिहारी अगर चूक गये होते तो सदाके

लिए बेपानी हो जाते । पर उन्होंने कच्ची गोटी नहीं खेली थी। दसो उँगली जोड़ कर वे बोले -- 'महाराज ! मैं चौबे भला का लायक हौं ? हम लोगन के नामके पीछें तो वैसे हीं बे लगौ रहतु है। पै महाराज कौ हुकुम सर माथें, मैं जरूर हजूर की मरजी पूरी करौंगो। मैं भौत से बाघ बुलायें लेतों। जितने मन चाहें मार लीजो, बाकी कान पकरिकें भगाई दीजो।'

यह कह कर हमारा

महाकवि एक ऊँचे पेड़पर चढ़ गया और वहाँ बैठ कर बड़े रागसे उसने यह दोहा पढ़ा——

दीरघ दाघ निदाघ जिमि
झेलि पूस अरु माघ।
बिरहागिन बाघिन बरै
फागुन लागे बाघ ॥

दोहा सुनना था कि सैकड़ों बाघ प्रेमोन्मत्त हो कर बाहर निकल पड़े और अपनी बाघिनोंकी तलाशमें अरक्षित घूमने लगे। जयसिंहने मनमाना शिकार किया।

उस दिनसे बिहारीका मान-महत और भी बढ़ गया। अपनी दँतखोदनी तो जयसिंहने उसी समय उन्हें भेंट कर दी और कहा——'रे कवि! मैं छूट देता हूँ कि आजसे जितनी लकड़ी तेरी रसोईमें ख़र्च हुआ करे सब तू मेरे इन्हीं जंगलोंसे बटोर लाया कर।'

आगम-सोची

जेठका महीना था और दोपहरका समय। धूपके नामपर आग बरस रही थी। अवनी जैसे आवाँ हो रही थी। सारे प्राणी पटपटा रहे थे।

ऐसे समय मैंने छः वर्षके एक बालकको रुईदार बंडी और रुईदार कंटोप पहने देखा।

पंचातपकी इस वेलामें ऐसे आच्छादनकी क्या आवश्यकता हो सकती थी ? मैंने अपनी खोपड़ी बहुत खटखटायी पर इस प्रश्नका उत्तर वहाँ न पा सका।

बालकसे पूछनेपर उसने अपनी मुट्ठी खोल कर दिखा दी और सामने एक कमरेकी ओर इशारा कर दिया।

कमरेमें उसके पिता थे, और मुट्ठीमें एक ऐनकका भग्नावशेष।

यहाँपर स्थालीपुलाक, काकतालीय, सूचीकटाह, तृणजलौका इत्यादिसे काम न चलते देख मैंने एने-ओने न्याय द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि बालकने खेलते-खेलते अपने पिताकी ऐनक फोड़ डाली थी और अब उन्हें इसकी सूचना देने जा रहा था।

अतएव रुईदार बंडी और रुईदार कंटोप इस अवसर-पर आवश्यक हुए।

कोई पँचहत्था धतींगड़ होता और पोर-पोरसे जिरह-पोश हो कर जंगमें जाता तो हम उसे योद्धा कहते

न अफरते, गो इस नन्हे-मुन्नेको वीर भी कहते हम हकलायँगे। पर आगम-सोचियोंकी सूचीमें उसका नाम बहुत ऊपर लिखते हमें कोई दग़दग़ा न होना चाहिए।

प्रत्येक सम्भाव्य परिस्थितिको पेशबन्दियोंसे कस लेना असली छापके आगम-सोचियोंकी अपनी विशेषता है। हमारे चौधरी बेलनसिंह जी ऐसे ही आगम-सोचियोंमें थे, बल्कि उनमें भी धन्य और मूर्द्धन्य थे।

बात उस बीते युगकी है जब इस देशमें अँगरेज़ोंका स्वराज्य लड़खड़ा रहा था और हमारा स्वराज्य ख़म ठोंक कर आगे बढ़ रहा था। असहयोग उन दिनों अपनी चढ़ती जवानीपर था। पावस-पोषित पहाड़ी नदीकी भाँति पुष्ट और प्रहृष्ट हो रहा था। किसी अवश्यम्भावी उथल-पुथलकी ओर सबकी टकटकी बँधी हुई थी। हुक्कामोंकी नींद हराम हो रही थी, राजभक्तोंकी नानी मर रही थी।

चौधरी बेलनसिंहने, जो स्वयं एक कट्टर राजभक्त थे, घबरा कर अपने छोटे भाई खेदनसिंहसे कहा-- 'अजी, तुम असहयोगी क्यों नहीं हो जाते।'

खेदनसिंह ने चौंक कर पूछा--क्यों ?

'अच्छा रहेगा। जीत जनताकी अगर हो तो तुम मुझे बचाना, सरकारने धर दबोचा तो मैं तुम्हें बचाऊँगा।'

बचपनमें सुनी एक प्रसिद्ध कहानीके आधारपर इसे हम ढेला-पत्ता नीतिका नाम दे सकते हैं। यह नीति संसारके आगम-सोचियों द्वारा सदासे समादृत रही है और रहेगी।

पर आगम-सोचियोंकी दूरन्देशीका सच्चा करिश्मा मेरी आँखोंके सामने उस समय नाच गया जब मैंने अपने मकानकी दक्षिण ओर एक ज़मीन ख़रीदनी चाही और मेरे पुरोहित जी ने इसका उग्र विरोध किया।

मैंने उनसे कहा—'पण्डितजी महाराज ! यह ज़मीन मेरे मकानसे बिलकुल सटी होनेके कारण मेरे बड़े कामकी है और आसानीसे मिल भी रही है । फिर आप क्यों राहमें खुत्था हो रहे हैं ?'

'बाबू साहब !'—उन्होंने उत्तर दिया—'मैं तुम्हें जीती मक्खी नहीं निगलने दूँगा । दक्षिणकी भूमि प्राप्त करना, दक्षिणमें मकानका विस्तार करना और दक्षिण घरका द्वार रखना—ये तीनों कार्य्य महा अनिष्टकारक हैं । पूर्वजोंने बहुत दूर तक सोच कर दक्षिणका निषेध किया है ।'

'पर मैं यह निषेध माननेको तैयार नही हूँ । आप मुझे समझाइये कि दक्षिणमे क्या दोष है ।'

'तुम्हीं कहो तुम्हारे देशके दक्षिणमें क्या है ?'

'समुद्र है ।'

'लोग दक्षिणकी ओर ज़मीन लेते और मकान

बढ़ाते चले जाते तो एक दिन ठीक समुद्र तक पहुँच जाते या नहीं ?'

'हाँ तब ?'

'और दक्षिणकी ओर घरका द्वार भी अगर होता तो...........

'तो क्या होता ?'

'तो यह होता कि किसी दिन अँधारे-धुँधारे घरसे निकलनेपर गड़पसे समुद्रमें चले जाते।'

मैं क़ायल हो गया। उस ज़मीनको लेनेका विचार मैंने उसी दम त्याग दिया।

ऐसे महान आगम-सोचियोंके टाटमें भी बाबू टिकैतराय बिलकुल फ़र्द आदमी निकले। उनका पूरा जीवन ही इस श्रेष्ठ गुणपर एक भाष्य कहा जायगा।

जिस दिन उनके विवाहकी बात पक्की हुई, उसी दिन उन्होंने एक पालना ख़रीद लिया। और छतकी जिस कड़ीमें उसे लटकाना था उसमें एक पालतू

बिलौटेको झुला कर उन्होंने देख भी लिया कि एक तन्दुरुस्त बच्चेका बोझ वह अच्छी तरह सँभाल तो लेगी।

उनके वृद्ध पिताने जब चारपाई पकड़ी और यह निश्चय हो गया कि डेढ़-दो महीनेसे अधिक अब नहीं चलेंगे, तब बा० टिकैतरायने पितृमरणोत्सव मनानेका आयोजन तत्काल आरम्भ कर दिया। इंतज़ामकी ख़ूबी यह थी कि पिता जी के सुरधाम सिधारनेके एक मास पहले ही से झंडियों और झालरों और लट्टुओंसे लैस एक तावदार टिखटी बन कर पिता जी के कमरेके सामने रख गयी थी।

यही टिकैतराय जी जब पचासके ऊपर हुए तब उनका शरीर किसी नशेका सहारा खोजने लगा और उन्होंने शराबसे लौ लगानेका निश्चय किया। पर ऐसा करनेके पूर्व उन्होंने यज्ञोपवीत पहन लिया; वही यज्ञो-पवीत जिसके नामसे उन्हें चिढ़ थी और जिसे इतनी

अवस्था तक वे फाँसीका फँदा पुकारते आये थे। लेकिन इस समय यज्ञोपवीत धारण कर लेनेका यह निमित्त था कि जिस आलमारीमें वे बोतलें रखने वाले थे उसकी चाभी ब्रह्मसूत्रमें ही सुरक्षित रह सकती थी।

आगम-सोची केवल भाग्यको भाग्यके भरोसे छोड़ता है, शेष जो कुछ करणीय है उसे करके वह निसोची हो जाता है। सन्नद्धता ही उसकी दूरदर्शिताकी आधार-शिला होती है। पं० लोचन राम जी जब भी घरसे निकलते हैं; दिन, दोपहर, रात कोई समय हो; जाड़ा, गरमी, बरसात कोई मौसिम हो; उनके पास एक हाथमें गुप्ती, दूसरेमें चोरबत्ती, कंधेपर लटकता हुआ छाता, कोटके अस्तरमें सिले हुए दस-दसके बीस नोट, और जेबमें एक शीशी अमृत-धारा—इतनी चीज़ें अवश्य रहती हैं।

यह आवश्यक नहीं है कि आगम-सोची सदा यथार्थवादी ही हो। वह अकसर आशावादके महाशून्यमें भी लम्बी उड़ान भरा करता है। मुं० अछैबरलालको

अट्ठाईसकी अवस्थामें जब अँगरेज़ी पढ़नेकी छटपटी लगी तब वे अपने लिए अँगरेज़ीका प्राइमर ख़रीदने गये, और सस्ते दामोंमें पा कर शेक्सपियरका एक पूरा सेट भी ख़रीदते आये ।

लाला केवल चन्द इनसे भी दस क़दम आगे थे । धनोपार्जनके लिए बम्बई प्रस्थान करनेके पूर्व उन्होंने अपने मकानमें एक तलघरा बनवा लिया और उसमें कई तिजोरियाँ फ़िट करा डालीं ।

पर पं० मँगरू मिसिरकी बराबरी ये लोग भी नहीं कर सके । उन्होंने खूँटा तो कभी से गाड़ रक्खा था, हौदी अब बनवायी है । गाय अपनी इस ज़िन्दगीमें ख़रीद सकेंगे या नहीं——यह भगवान जाने ।

मन मिलेका मेला देखना हो तो वर्माजी और उनकी पत्नीमें देखिये ! दोनोंमें ढोल-मजीरेसी पटती है । आपसके प्रेम-सम्बन्धमें कभी खोंच-खरोंच लगी ही नहीं । कारण यह है कि वे ज़रूरतसे ज़्यादः पति

बननेकी कोशिश कभी करते नहीं; और वह अपनी ओरसे उनकी सेवा-टहलमें कोई ख़ामी कभी आने नहीं देती; यहाँ तक कि कभी उन्हें बाहर जानेकी

जल्दी हुई तो ख़ुद उन्हें कपड़े पहना कर उनके बालोंमें कंघी कर देती है। उन्हें सिर्फ़ मूँछोंपर ताव देना बाक़ी रह जाता है।

सो यह भी करनेको वह तैयार रहती है, पर वर्मा जी आगम-सोची आदमी हैं और यह नहीं चाहते कि उसे उनकी मूँछोंपर भी हाथ रखनेकी टेव पड़ जाय। उनका कहना है कि अभी तो मेल है, कौन जाने आगे कभी खटक जाय तो यह टेव, यह आदत, ख़तरा पैदा कर सकती है।

पर आगम-सोचियोंकी इस सारी सेनाको मेरे बच्चेने अकेले परास्त कर दिया। वह सिर्फ़ पाँच वर्षका है पर अभीसे तर्पण करना सीख रहा है। इसी पितृ-पक्षमें मैं पितरोंको पानी देकर उठता था तो वह अर्घा लेकर बैठ जाता था और घण्टों अभ्यास करता था। भगवान ऐसा पुत्र सबको दे।

प्रकाशक-पञ्चदशी

मुझे आज तक हिन्दीमें दो ही ग्रंथ अच्छे लगे; एक तो वह जो मैं लिखने वाला था पर समय न मिलनेसे न लिख सका, और दूसरा वह जो मैं लिखूँगा यदि समय मिला तो।

तब भी बहुत दिन हुए मैंने 'सुख, समृद्धि और शान्ति' नामकी एक पुस्तक पढ़ कर 'दुःख, दारिद्र्य

और दुर्दिन' नामकी पुस्तक लिख डाली थी; और उसका स्वत्वाधिकार किसी प्रकाशकके हाथोंमें सौंप, मैंने कुछ काल तक सुख, समृद्धि और शान्तिका अनुभव करना चाहा था।

मेरे जीवनकी रङ्गशालामें किसी प्रकाशकने उस समय तक प्रवेश नहीं पाया था। यह पहला ही अवसर था जब मुझे एक प्रकाशकका मुँह देखना पड़ा था।

शहरसे आते-जाते अपने रोज़के रास्तेमें मेरी निगाह अकसर एक बहुत बड़े साइन-बोर्डपर पड़ जाया करती थी, जिस पर लिखा था—

ग्रन्थ-गेह

पुस्तक-प्रकाशक और विक्रेता

मालिक—लाला रूपचंद

मैंने अपने मनमें इन्हीं लाला रूपचंदको अपना प्रकाशक वर लिया। मेरे लिए सभी प्रकाशक बराबर थे, जैसे नागनाथ वैसे साँपनाथ।

मैं दूसरे ही दिन उनसे मिला। वे गलेमें सोनेकी सिकड़ी और बाँहपर सोनेका बिजायठ पहने, बैठे हुए बही लिख रहे थे। मुझे देख कर बड़ी मनुहारके साथ उठ खड़े हुए और बोले—‘जै रामजीकी, लाला जी! आइये बैठिये।’

मैं ‘जै-रामजी-की’ का जबाब देकर बैठा ही था कि उन्होंने कहा—‘इस समय, लाला जी, मेरे पास एक नम्बरका माल है—साफ़, सफ़ेद और रवादार। आप ख़ुश हो जायँगे।’

मैं कुछ समझा नहीं; घुग्घूकी तरह उनकी ओर निहारता रहा। उन्होंने फिर कहा—‘आप विश्वास मानिये, ऐसी चीनी आपको इस शहरमें कहीं नहीं मिलेगी।’

'चीनी ? कैसी चीनी ?'—मैं घबरा कर बोला—'आप प्रकाशक क्या नहीं हैं ? आपके घरके आगे साइन-बोर्ड.........

'हाँ-हाँ, प्रकाशक भी हूँ। दो बरससे मैंने प्रकाशनका भी काम खोल दिया है ; इस काममें भी अच्छी निकासी है। लेकिन आप लेखक हैं क्या ?'

'जी हाँ।'

यह सुनना था कि रोकते-रोकते उनके मुँहसे निकल गया—'राम राम ! नाहक मैं आपको देख कर खड़ा होने गया।'

मेरी देहमें जैसे लुत्ती लग गयी। मैंने कहा—'सौ बार कान पकड़ कर उठने-बैठनेसे उसका प्रायश्चित्त हो जायगा।'

'अजी तुम बड़े ढीठ जान पड़ते हो। लेखक लोग मुझे देख कर भयसे काँपते हैं।'

'चूहोंको देख कर प्लेगके भयसे मैं भी काँपता हूँ।'

वे चुप हो रहे । कुछ ठहर कर उन्होंने पूछा—'तुम करते क्या हो ?'

'कहा न कि मैं लेखक हूँ ।'

'नहीं, और क्या करते हो ? मैं जैसे प्रकाशक हूँ पर चीनी, चावल और चीना-बादामकी आढ़त भी करता हूँ ।'

'इस तरह तो मैं लेखक हूँ पर चोरी, चमारी और चाकरी भी करता हूँ ।'

'हूँ ! अच्छा रहते कहाँ हो ?'

'यहीं रहता हूँ मुहल्ला बारह-दरीमें; पर मेरे पिता चौबीस-परगनेमें और दादा छत्तीस-गढ़में रहा करते थे ।'

'अजी तुम आदमी हो कि पनशाखा, बातोंका ठीक उत्तर क्यों नहीं देते ? पुस्तककी पण्डुल लाये हो ?'

यह अवश्य ही किसी कर्णपिशाचीकी कृपा रही होगी जो मैं झट समझ गया कि पण्डुल, उनकी भाषामें, पाण्डुलिपिको कहते हैं। मैंने उत्तर दिया—'जी हाँ, पण्डुल ले आया हूँ।'

'लेकिन मैं पढ़ूँगा नहीं, मझे इतना समय कहाँ। पुस्तकका नाम क्या है ?'

'दु:ख, दारिद्र्य और दुर्दिन।'

'कैसा मनहूस नाम है ! और तिसपर से पूरे तीन बालिश्तका। नाम बदल दो, उपन्यासोंके नाम ऐसे नहीं होते।'

'लेकिन आपसे यह किसने कहा कि मेरी पुस्तक उपन्यास है ?'

'उपन्यास नहीं है ?'

'जी नहीं।'

'अजी सच कहना।'

'मैं दुनियाकी तमाम क़समोंकी क़सम खाता हूँ कि मेरी पुस्तक उपन्यास नहीं है ।'

'तुम मेरी नज़रोंमें प्रति क्षण गिरते जा रहे हो । अच्छा, तुम्हारी पुस्तक अगर उपन्यास नहीं है तो है क्या ?'

'कुछ विचारपूर्ण लेखोंका संग्रह है ।'

'लेखोंका संग्रह ! हरे राम, हरे राम ! अजी मैं ऐसी पुस्तकोंकी छाया अपनी छड़ीसे नहीं छूता, छापना तो दूर रहा ।'

'अच्छी बात है, मैं जाता हूँ । जाते-जाते ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि वह शीघ्र ही आपको इस पशु-योनिसे छुटकारा दे ।'

यह कह कर मैं उठ खड़ा हुआ और चलने लगा । दो ही क़दम आगे बढ़ा था कि लाला रूपचन्दने कहा—'ज़रा रुको तो ।'

मैं रुक गया।

'यह जो काँखमें दबाये हो यही तुम्हारी पुस्तक है न ?'

'जी हाँ।'

'फुलिसकेप कागजपर लिखी जान पड़ती है। डेढ़ इंचका हाशिया छोड़ कर एक ओर लिखे हो ?'

'जी हाँ।'

'कुल सेर भर होगा वज़नमें ?'

'हो सकता है। क्यों ?'

'बीस रुपये सेर मेरा रेट है। तुम पचीस ले लो।'

मुझे ऐसा जान पड़ा कि इस व्यक्तिके सामने यदि एक क्षण भी और ठहरा तो भलमनसाहतके सारे संस्कारोंपर एक दमसे पानी फेर बैठूँगा। मनमें भारी उफानका एक तूफान लिये मैं सीधे घर लौट पड़ा।

मैं लाला रूपचन्दको प्रकाशकोंका प्रतिनिधि तो नहीं कहता पर यह कहता हूँ कि उन जैसे प्रकाशक

भी हिन्दीमें अनेक हैं। जो अच्छे हैं प्रायः वे भी अन्धोंमें कानोंसे बढ़ कर नहीं हैं।

दोष हम लेखकोंका भी कम नहीं है। हमारा, एक तुक्कड़के शब्दोंमें, वही हाल है कि—

जपें नाम साहित्यका - मनमें छिपी छपास।
करें बात हरि भजनकी - ओटत फिरें कपास।।

सो इसी छपासका मारा अर्थार्थी लेखक प्रकाशककी पौरीमें पहुँचते ही स्वाभिमानका गला टीप देता है और सब तरहसे सब कुछ माननेको तैयार हो जाता है।

प्रकाशक व्यवसायी है। वह दयाकी दरगाह खोल कर नहीं बैठा है। वह केवल पैसेका पहलू देखेगा। साहित्य-सेवाके प्रति उसकी वही भावना हो सकती है जो एक फ़र्नीचर बनाने-वालेकी अपने कारख़ानेमें गिरी हुई कुनाईके प्रति होती है।

ट्रम्पके सारे पत्ते प्रकाशकके पल्ले हैं। आप अपने ग्रंथके जन्मदाता भर हैं, वह उसका भाग्य-विधाता

है । दाना-दाना उसे दे कर आप कन्ना पर कनात कर लें तो वह आपको जीनेकी इजाज़त दे देगा । वह पेट भर कर उठ जाय तो आप पत्तल चाट सकते हैं, इसमें उसे कोई आपत्ति न होगी ।

मैं जब पंचदश वर्षका था तब चालीसाका पाठ करता था, हनुमान-चालीसाका; अब चालीस वर्षका हूँ तो पंचदशीका पाठ करता हूँ, प्रकाशक-पंचदशीका । मेरी सलाह है कि और लेखक भी अपने लोक-परलोकके लिए इसीका पाठ नियमपूर्वक किया करें—

प्रकाशक पञ्चदशी

—१—

मर-जी कर मरजी मैं उनकी
करनेको आमादा ।
माने अनुचर या अनुगामी
समझें नर या मादा ।।

—२—

तूम-तड़क है बोली उनकी
मेरी हें-हें-हिनहिन।
देखूं उनके लाखों नखरे
अखरे एक न लेकिन।।

—३—

थक कर माथा हुआ खोखला
पेट सदासे खाली।
किन्तु करूँ सन्तोष देख कर
उनके मुखकी लाली।।

—४—

जो कुछ कहें लिखूं लिखवा दूँ
जब भी, जितना, जैसा।
श्री चरणोंमें पड़ा रहूँ
बस वर दें मुझको ऐसा।।

—५—

फटेहाल बेहाल बना मैं
वे हैं छैल-चिकनिया।
मैं गरदन देनेको आया
वे देते गरदनिया।।

—६—

है सोने-सा मूल्यवान

पर दूँ जस्ते-सा सस्ता।

नैन मिला के, जी भरमा के

ले लें सारा बस्ता॥

—७—

हम मजूर हैं हाँ-हजूरमें

हाजिर सदा रहेंगे।

छठे-छमासे पा कर टुकड़ा

अपना भाग कहेंगे॥

—८—

वे स्वामी हम सेवक सच्चे

हम परजा वे राजा।

सत्तू-नमक अलम् है हमको

उन्हें दूधमें खाजा॥

—९—

त्राण करें या त्रास दिखावें

है क्या मेरा बस ही।

बाँधे हाथ खड़ा हूँ आगे

दें पनाह या पनही॥

—१०—

कृपा-कोर उनकी जो पाऊँ
सोचूं ऐसा बहुधा।
धायँ-धायँ ग्रन्थोंका गोला
दाग चलूं मैं चहुँधा॥

—११—

हैं वे बाघ बड़े बल-शाली
मैं बेदमका दुम्मा।
जीवन-दान मिलै जीवनभर
लूं चरणोंका चुम्मा॥

—१२—

ड्योढ़ी बन्द न करना अपनी
और करो जो दादा।
कान पकड़ता हूँ जो फिर
पैसों का करूँ तगादा॥

—१३—

सम्पतिके पथपर वे सुखसे
चलैं लगाये पलथी।
पर सुखपाल बैना जो उनका
वह है मेरी अरथी॥

—१४—

घड़ी-घड़ी घड़ियाल पुकारै
घड़ियाँ अपनी गिन तू ।
लिख ले, उन्हें सौंप ले, तब
कफनी या कफन पहिन तू ।।

—१५—

पंचदशी यह प्रेम सहित
जो सायं-प्रातः गावें ।
सहस बार चौरासी घूमैं
लेखक-जनम न पावें ।।

रईसोपाख्यान

उन दिनों मैं अपने हृदयकी वीणा नोकरी देने वालोंके दरवाज़ोंकी कुंडी खटखटा कर बजाया करता था। इस लिए जब मुझे मालूम हुआ कि राजा धनपत राय जी कलकत्ते आ रहे हैं और कई दिन अपनी कोठीपर ठहरेंगे तब मैंने उनके सेक्रेटरी और अपने

मित्र पं० निहालचंदको लिखा कि आजकल मैं भी कलकत्तेमें हूँ, मेरी उनकी यहीं भेंट करा दो, शायद किसी काम-काजका डौल बैठ जाय।

आज इसी भेंटका सुख-संयोग उपस्थित हुआ था। साढ़े-चार बजे शामकी बदान थी। मैं चार ही बजेसे कोठीके सामने कावा काटने लगा। यह सात मंज़िलकी संगीन अट्टालिका बड़ाबाज़ारकी एक गलीमें छाती ताने खड़ी थी। मालिकके आ जानेसे दरवाज़ेपर रौनक़ आ गयी थी और ख़ासी आबादानी दिखायी पड़ रही थी।

पर एक चीज़ जो मेरी बुद्धिके वृत्तके बिलकुल बाहर पड़ रही थी वह यह थी कि घासके बोझ-पर-बोझ मँगाये और कोठीके अन्दर भेजे जा रहे थे। मेरे देखते-देखते पचीसों बोझ भीतर जा चुके थे और अभी और भी चले ही आ रहे थे। यह इतनी सारी घास क्या होगी, किस काम आयेगी ?

ख़ैर, ठीक साढ़े-चार बजे निहालचन्द जी अपने दफ़तरमें दिखायी पड़े और मैंने ड्योढ़ी पार करके वहीं उनका पीछा किया। बरसों बाद उनसे मुलाक़ात हुई थी। किसी समय मेरी उनकी धमाचौकड़ी हुआ करती थी। अब भी जो मिले तो मेरी पीठपर एक धौल जमाते हुए बोले––'अच्छा तो तुम अब नोकरी करोगे ?'

'जब तक नोकरशाही नहीं मिलती तब तक नोकरीसे ही जी बहलाऊँगा।'–मैंने उत्तर दिया।

'पर हो तुम किस मर्ज़की दवा ? राजा साहबकी क्या सेवा तुम कर सकोगे ?'

'उन्हें छींक आयेगी तो शतंजी कहूँगा और जँभाई आयेगी तो चुटकी बजाऊँगा।'

'मैं सचमुच नहीं समझ पा रहा हूँ कि हमारे राजा साहब तुम्हारे लिए क्या काम पैदा करेंगे।'

'रख भर लें, काम तो मैं पैदा कर लूँगा । और कुछ नहीं तो यहाँ उनके घोड़ोंकी..............

'कैसे घोड़े ?'

'घोड़े तुम नहीं समझते ? अश्व, बाजी, हय, तुरंग घोटक--अब समझे ? वह सुमदार और बेसींग का जानवर जो गधेका बड़ा भाई लगता है ।'

'पर अपने इस बड़े भाईका ज़िक्र तुम इस समय क्यों छेड़ बैठे हो ?'

'मज़ाक़ नहीं । राजा साहबकी इतनी बड़ी घुड़साल है, एक मनेजर उसके लिए ज़रूर चाहिये । मैं घोड़ोंके गुण-दोष, बाल-भौंरी सब जानता हूँ । सब्ज़ा, मुश्की, गर्रा, नुक़रा, अबलक़, कुम्मैत आदि घोड़ोंके रंग-भेद हैं; लंगूरी, सरपट, कदम, दुलकी, रहवाल आदि उसकी चालें हैं; अरबी, वेलर, टाँगन, सुबुक, खुरासानी..............

'अजी तुम आदमी हो कि घनचक्कर ! यहाँ कलकत्तेमें राजा साहबका कहाँ घोड़ा और कहाँ घुड़साल ?'

'अभी-अभी मैंने देखा है कि कुछ नहीं तो पचास गट्ठर घास कोठीके फाटकसे अन्दर दाख़िल हुई है।'

'ओहो, यह बात है! इसी अक़्लपर आप नोकरी करने चले हैं! भीतर इतनी घास आते देख आपने समझा कि राजा साहबने छतपर या तहख़ानेमें तबेला खोल रखा है?'

'यह न समझता तो यह समझना पड़ता कि तुम लोग जितने इस कोठीमें रह रहे हो अब इधर कुछ हफ़्तों तक घास ही पर बसर करोगे। आख़िर इतनी घास होगी क्या?'

'अरे बेवक़ूफ़, वह सारी घास छतपर लान बनानेके लिए मँगायी गयी है। तुम राजा-रईसोंका हाल क्या जानो। हमारे राजा साहब अपनी ज़मीन्दारी छोड़कर बहुत कम कहीं आते-जाते हैं। वहाँ उनकी हवेलीके सामने बहुत बड़ा लान है, जिसपर रोज़ शामको पलँग डाल कर बैठनेके वे आदी हैं। वही लान आज छतपर

हरी घास बिछा कर उनके बैठनेके लिए यहाँ बनाया जा रहा है। घोंघाबसन्तजी ! अब समझे आप ?'

मैं बड़ा फिट्टा पड़ा। बात फेरनेके लिए मैंने पूछा--'राजा साहबको अपना गाँव इतना प्रिय है तो कलकत्ते क्यों आने गये ?'

'ग़म ग़लत करने चले आये हैं। गत मास इनकी छोटी रानी साहिबा एक कारिन्देके साथ निकल गयीं; जाते समय ज़र-ज़ेवरकी बहुत सी माया भी लेती गयीं।'

'इनकी सब रानियाँ निकल जायँ पर मैं न निकलूँगा; एक बार रख तो लें !'

'चलो मुलाक़ात मैं करा देता हूँ, खुद बातें कर लेना। बहुत अदबके साथ बैठना-बोलना। अपने पिताका जितना आदर करते हो उससे दूने आदरके साथ इनसे..............

'उससे दूने आदरके साथ ? याने पिता पुकारते हैं तो जी कहता हूँ, ये पुकारें तो जीजी कहूँ ?'

निहालचंदने मुझे राजा साहबके सामने ला खड़ा किया। उन्हें एक नज़र देखनेके बाद मैं उनकी छोटी रानीको मुतलक़ क़सूरवार न समझ सका जिसने उन्हें त्याग कर एक कारिन्देको अपना लिया था।

मैंने देखा कि रुईके मोटे गद्देपर रुईकी गाँठ सरीखा ही मांसका एक भारी लोथड़ा अधलेटा हुक्का पी रहा है। मशक-सी लाद छाती तक चढ़ी जा रही है और छातीका बदगोश्त लादपर यों लटका आ रहा है जैसे तेरह सौ बच्चोंको दूध पिलाया हो। इसी समय एक खाँसी जो आयी तो सारा शरीर लपसीके लोंदेकी तरह लप-झप कर उठा।

वह अनगढ़ मांसपिण्ड निहालचन्दकी ओर मुड़ कर बोला—'ई के हैं ?'

[एक सौ तिरानबे

'सरकार, ई हमरे जान-पहचानी हैं। हजूरकी खिदमतमें रहा चाहत हैं।'

'ई कारिन्दा बनै आये होयँ तौ इन्हें गोली मार दऽ, कारिन्दा सारनके हम मुँह नाहीं देखा चाहित।'

'नाहीं सरकार, कारिन्दा नाहीं, कौनो और काम इन्हें बकसल जाय।'

'अच्छा तौ आज सोचके कल इन्हें जवाब दिहे। इन्हें टेलीफून क लम्बर दे दऽ अउर कह दऽ कि कल पूछ लेइहें।'

निहालचन्दजी ने कोठीके टेलीफोनका नम्बर अँग-रेज़ीमें लिख कर मुझे दे दिया। नम्बर था B. B. 9211.

राजा साहबने मेरी ओर मुखातिब हो कर पूछा—'अँगरेजी पढ़ जाई न? पढ़ऽ का लम्बर लिखल हौ।'

मुझे मन-ही-मन हँसी आयी कि जो आदमी अँगरेज़ी लिखने-बोलनेमें अगड़धत्तईका दावा रखता है उसे

टेलीफ़ोनका नम्बर पढ़ कर आज अपनी योग्यताका परिचय देना पड़ रहा है। पर यह सब सोचनेका समय कहाँ था। मैंने चट उत्तर दिया––'हाँ सरकार, अँगरेज़ी ख़ूब पढ़ लेता हूँ। आपके टेलीफ़ोनका नम्बर है––बी-बी, नौ-दो-ग्यारह।'

अर्र र्र र्र.......... ! यह मैं क्या कह गया ! मैंने फ़ौरन अपनी जीभ दाँतोंसे काट खायी ; पर तब तक तो तीर निशानेपर बैठ चुका था। मैंने राजा साहबकी ओर देखा। वे मुँहपर फेन छोड़ते हुए उठनेकी कोशिश कर रहे थे। इससे अधिक मैं न देख पाया, क्योंकि तब तक दो नोकरों ने रगेद कर मुझे कमरेके बाहर कर दिया था।

इसे मुलाक़ात कहिये या मुठभेड़, दीदार कहिये या दुर्भाग्य, पर यह पहला मौक़ा था जब मुझे किसी रईस नामक जन्तुसे आमने-सामने निपटना पड़ा। बादमें तो ऐसे अवसर अनेक आते रहे। अब मैं इन जीवधारियोंको सिरोपा जान गया हूँ।

मैं बबुआ पुष्पकेश्वरप्रसादसे मिलने गया। वे मुझे ५०-५५ की अवस्थाके आदमी जान पड़े ; पर वे छातीके नीचे तकिया रख कर औंधे लेटे हुए एक स्प्रिंगदार विलायती खिलौना खेल रहे थे । और सब ठाट-बाट तो राजसी था लेकिन उनके बदनपर जो धोती थी वह निहायत मैली थी। लाचारी यह थी कि उनका ख़ास नोकर जो उन्हें अपने हाथों धोती पहनाता था उधर एक सप्ताहसे बीमार पड़ा हुआ था।

ठाकुर अशरफ़ीसिंह जी शहरसे दूर अपने बागमें रहते हैं। गोधूलीमें जब कभी वे टहलने निकल पड़ते हैं तब उस समयका दृश्य निरतिशय अपूर्व होता है । वह दृश्य हृदयंगम करना हो तो आँखोंके सामने यह ख़ाका खड़ा कीजिये--

---आगे-आगे ठाकुर साहब स्वयम् ।

---पीछे पिछलगुओंका एक जत्था ।

——तीन नोकर साथमें; एक पीछे, दूसरा दाहिने, तीसरा बायें ।

——पीछेवाले नोकरके सरपर गाता हुआ रेडियो है ।

——दाहिनी ओरके नोकरके हाथमें पान, बरास, ज़रदा, जावित्री आदिका थाल है ।

——बायीं ओर वाला नोकर सिर्फ़ लँगोट पहने हुए, बिलकुल नंगे बदन, एक मोटा तोंदीला आदमी है, जिसके पेड़ूके ठीक ऊपर और तोंदके ठीक नीचे एक खुला कनस्तर बँधा है ।

अब ज़रा दिल थाम कर आगेका दृश्य देखिये । ठाकुर साहब दाहिनी ओरसे पान लेते हैं । चलते-चलते मुँहमें पीक बनाते हैं । और मुँह जब भर जाता है——तब——चलते-ही-चलते बायीं ओरके नोकरकी खुली तोंदपर पीककी पिचकारी मार देते हैं। यहाँसे वह पीक बह कर आप ही कनस्तरमें ढरक जाती है ।

रईसीका यह वीभत्स रूप कल्पना-प्रसूत नहीं है। यह आँखों-देखी चीज़ है।

ऐसी रईसीका सत्यानास सुधारोंकी सटकारीसे नहीं होनेका। इस पर तो किसी घोर क्रान्तिकारी व्यवस्थाका बजरबोंग ही काम देगा।

इस बिरादरीमें भला उन नामाक़ूलोंकी क्या कमी हो सकती है जो ख़ब्त-ख़ुराफ़ातमें और अमल-व्यसनमें लाखों बहाते हैं, पशु-पक्षियोंपर और रंडी-भँडुओंपर लाखों बिगाड़ते हैं। ऐसे ही एक गँठ-पूरेको मैं जानता हूँ जिसने एक साँड़ पाल रखा है—सुबह उसे किशमिश खिलाता है, दोपहरमें बेसनकी बुँदिया और रातमें निशास्ता। दूसरा है जो अपनी रखेलीको मुश्कका उबटन लगवा कर दूधके टबमें स्नान कराता है।

इन रईसोंसे समागमका जो क्रम मेरे जीवनमें राजा धनपतरायसे आरम्भ हुआ था वह इस समय तो

राव करोड़ीमलसे समाप्त हुआ जान पड़ता है। आगेकी भगवान जाने।

नोकरीकी मरीचिका ही मुझे एक दिन राव करोड़ीमलके कूचेमें भी खींच ले गयी। उनकी दहलीजपर दिल बिछाये घंटों टापते रहनेके बाद, एक कर्मचारी द्वारा उनके हुजूरमें मैं हाँक लाया गया।

करोड़ीमलका नाम मैं बहुत सुना करता था। लोग कहा करते थे कि वे रईस ही नहीं, बल्कि रईस-आज़म हैं। मेरी मूर्खतापूर्ण धारणा थी कि जैसे ढोलोंमें ढमक्का और ढोरोंमें मुर्रा वैसे ही रईसोंमें रईस-आज़म होते होंगे। पर करोड़ीमलको मैंने जो देखा तो मुझे तो वे हूबहू एक चुडुक्केसे जान पड़े।

मुझे ऐसा लगा कि चतुराननने उनका आनन बहुत आनन-फानन बना डाला था। उनके चेहरेसे कुछ चीज़ें तो साफ़ ग़ायब थीं; जो चीज़ें थीं भी वे बहुत मुख़्तसर। जैसे ठुड्डी नामकी कोई चीज़ उनके चेहरेपर

थी ही नहीं ; आँखें थीं भी तो इल्लोंके आकार की। उनकी नाक थोड़ी और नगण्य होती और मैं मक्खी होता तो उसपर बैठ कर अपनेको सरकसका नट समझता। वे थोड़े और खल्वाट होते और मैं शुतुरमुर्ग होता तो उनके सरको अपना अंडा समझ कर ले भागता।

पर राव साहब अपने जिन मित्रों और मुसाहबोंसे घिरे बैठे थे उन्हें देख कर तो मेरी नाड़ी तिड़ीबिड़ी होने लगी। जेलके बाहर ऐसे बदकारोंका जमाव एक जगहपर जल्दी न मिलता।

राव साहब एक मख़मली गलीचेपर अपने पीछे बैठे हुए एक विशाल बुलडागकी पीठका उठँगन लगा कर लुढ़के हुए थे। दोनोंके मुँह इतने पास-पास थे कि मुझे देख कर कुत्ता जब भूकने लगा तब पहचानना मुशकिल हो गया कि किस मुँहसे वह ध्वनि निकल रही थी।

कुत्तेको उसका मुख चूम कर राव साहबने चुप कराया और तब बग़लमें बैठे हुए अपने मित्र गुलाबदासकी पीठपर प्रेमपूर्वक हाथ फेरते हुए वे बोले—'अरे गुलब्बू ! हम एक निजी सहायक रक्खा चाहत हैं। ई बाबू आये हैं, इन्हें जरा ठोक-बजायके देखौ तो हमरे कामके हैं कि नाहीं।'

यही गुलाबदास एक नाबालिग़ लड़कीका ट्रस्टी था और उसकी सम्पत्तिके साथ उसे भी नष्ट कर चुका था। सो इसी लुच्चे द्वारा पास किये जानेपर मुझे राव साहबकी नोकरी मिलती। पत्थर पड़े ऐसी नोकरीपर।

पर मैं ठुकने-बजनेके लिए तैयार हो कर बैठ गया ! भागूँ क्यों ?

गुलाबदासने शुरू किया—'यह तो आप देख रहे हैं कि हमारे श्रीमान राव साहब जू को जानवरोंसे

कितना प्रेम है ?'—राव साहबके कुत्तेकी ओर ताक कर उसने पूछा।

'उनका पशु-प्रेम तो प्रत्यक्ष ही है।'—मैंने स्वयम् उसकी ओर ताक कर उत्तर दिया।

इस उत्तरसे गुलाबदास एक बार तो ठक हो गया। हाथ मिलाते ही उसे इस गावपछाड़की आशा नहीं थी। सँभल कर उसने फिर पूछा—'तो आप ऐसी कोई बात बता सकते हैं जिससे आपका भी पशु-प्रेम प्रकट हो ?'

'पशुओंके प्रति प्रेमकी बात तो यह है कि मैं किसी भैंसपर कभी आशिक हूँगा तो कहूँगा—

कज्जर तन
भारी ज्यों बज्जर
डोल रही जैसे धमगज्जर।
उस पर आज
हुआ मैं लट्टू
दाँत देख कर उज्जर-उज्जर॥

इसके बाद गुलाबदासको और कुछ पूछनेका उत्साह नहीं हुआ। वह मष्ट मार गया।

पर राव साहबका इशारा पा कर दूसरे एक दरबारीने यह नयी चर्चा छेड़ी—‘हमारे सरकार साहब ऐसे प्रबल नक्षत्री हैं कि भगवान उनका और कुछ तो बिगाड़ न सका पर स्वास्थ्य उनका उसने बिगाड़ दिया है। उनके निजी सहायककी हैसियतसे आपको उनके स्वास्थ्यका सदा ध्यान रखना होगा। सो आप दवा-दारूके विषयमें कुछ ज्ञान रखते हैं?’

‘दवा-दारूका मैं घनघोर जानकार हूँ।’—मैंने उत्तर दिया—‘यद्यपि दारूके विषयमें जितना जानता हूँ उतना दवाके विषयमें नहीं। दारूके विषयमें तो मैं इस आप्त वचनको सत्य मानता हूँ कि—

दुनिया दारा दारू।
बाकी बात गँवारू॥

और दवाके विषयमें—

हम खुद ही कुछ न हों तो गवरमेंट क्या करे।
मेदे में दम न हो तो पेपरमेंट क्या करे।।

राव साहबने जब देखा कि मैं उनके मुसाहबोंके मानका नहीं हूँ तब वे स्वयम् आगे आये। मैंने अब ख़ूबसूरतीसे खिसकनेमें ही अपनी ख़ैरियत समझी। काफ़ी गलगाज भी चुका था।

उन्होंने कहा—'ई सब फालतू बात खतम करो। ई बताओ कि तुम्हें खाये-पहिनैके मामलेमें कुछ अनुभौ है? हमें बस खाये-पहिनैका सौख है।'

'जिन दो चीज़ोंका आपको शौक़ है'—मैंने उत्तर दिया—'उन्हीं दो चीज़ोंका मुझे सदा टोटा रहा। तब भी खाने-पहननेके मामलेमें मैं साधिकार इतना कह सकता हूँ कि अंडा और बंडा खानेकी चीज़ें हैं, अंडी और बंडी पहननेकी।'

राव साहबने अब साग्रह और सानुरोध मुझे विदा

किया। उनका एक ख़ास आदमी, हाथमें छड़ी लिये हुए, दरवाज़ेके बाहर तक मुझे पहुँचा गया।

किसी रईस नामधारी जीवकी यही मेरी अन्तिम झाँकी है। दुआ दीजिये कि यही अन्तिम बनी रहे।

दो सौ छः]

टेढी माँग

—१—

प्रिये !

इस बार पारी प्राणवल्लभेकी है, पर लिखता हूँ प्रिये। दस हाथ लम्बा प्यारका शब्द मुझे पसन्द नहीं। तुम भी मुझे प्राणवल्लभ न लिखा करो। ज़रा

वल्लभका तुक मिला कर देखो ; शलभ, वृषभ, रासभ, बस ऐसे ही शब्द मिलेंगे। मारो गोली, सबसे अच्छा प्राणप्यारे।

हाँ प्रेमसे लबालब कोई लम्बा पत्र अब लिखना तो पेजोंमें आलपीन मत लगा देना। इस बार तुम्हारा पत्र पढ़ कर हृदयसे लगाया तो आलपीन चुभ गयी।

वहाँ तुम्हारी कोई तस्वीर हो तो मेरे पास ज़रूर भेज देना। एक जो मैं अपने साथ लाया था वह यहाँ मेरे एक साथीके हाथ लग गयी। उस नालायक़ने उसकी पुश्तपर बहुत सी तुकबन्दियाँ लिखीं और लिख कर तमाम बोर्डिंगको सुनायीं। तुम भी सुन लो--

गति दैवी--अनीति अजगैबी।
सखि तेरा पति अतिशय ऐबी॥
हूर परी सी तू, वह हौआ।
तू कलकंठी, है वह कौआ॥
है वह गोदा, तू अंगूर।
तू दिवंगना, वह लंगूर॥

हाय करैं देखैं जो जोड़ी।
कोसैं बिधिकी बुद्धि निगोड़ी ।।

पूरा सुन कर क्या करोगी, इसी तरहकी वाहीतबाही थी। मैंने उस लड़केको कई घूँसे लगाये, कुछ तो उनमें काफ़ी वज़नी थे, पर उससे होता क्या। तब तक तो पूरी कविता कितनोंको कण्ठस्थ हो चुकी थी। सबको घूँसे लगाना सहस्त्रबाहुके लिए भी एक कठिन व्यायाम होता।

एक बात मैंने बहुत ज़रूरी लिखनेकी सोची थी। हाँ, याद पड़ गयी। तुम अपनी माँग बिलकुल बीचसे निकालती हो; मैं चाहता हूँ कि ज़रा एक बग़लसे निकाला करो। तुम्हारी शोभाका यह मदिर संस्करण देखते ही बनेगा। यों तो तुम अपने बाल चाहे जैसे बाँधो हर हालतमें वाह-वाह है। सच पूछो तो तुम्हारे खुले बालोंकी भी एक निराली छटा होती है। किसी कविने कहा भी है--

छुटे छुटावें जगतसे - सटकारे सुकुमार ।
जग बाँधें बेनी बँधे - अजब छबीले बार ।।

पर मैं अब भी यह माननेको तैयार नहीं हूँ कि तुम्हारी चोटीमें फालसई फीता उन्नाबीसे अधिक अच्छा लगता है । नाहक तुमने उस दिन मुझसे इतनी हुज्जत की । तुम्हारे पिता जी तो आर्य्य-समाजी भी नहीं हैं, फिर तुम्हें ज़रा-ज़रासी बात पर इस क़दर बहस करना किसने सिखाया ? ख़ैरियत है कि भगवानने आवाज़ ऐसी मीठी दी है कि उन सारी बहसोंको भी मैं शरबतकी तरह घुट-घुट पी जाता हूँ ।

ख़ैर, अब मैं असली बातपर आता हूँ । कलका ज़िक्र है । मैं अपने कमरेमें बैठा पढ़-सा रहा था कि तुम्हारे बड़े भाई साहब आ धमके—याने पधारे । मैंने बड़ा आवभगत किया । मैं क्या जानता था कि मेरा गला रेतने आये हैं । इधर-उधरके गपोड़ेके बाद कहने लगे कि पचीस तारीख़को मैं घर जाते समय लल्लीको भी तुम्हारे यहाँसे बिदा कराता जाऊँगा ।

यह सुनना था कि मुझे तो जैसे काठ मार गया। सारी आई-बाई पच गयी। २७ ता० को मेरी छुट्टी शुरू होगी, मैं गुलेलका छूटा हुआ सीधे घर पहुँचूंगा, और आप उससे दो दिन पहले ही पीहर चल देंगी। मैं काठका उल्लू हूँ न कि तुम्हें जाने दूँगा। मैं घर आऊँगा झख मारनेके लिए, क्यों ? तुम्हारे भाई साहबकी अक़्ल चरने चली गयी थी। मैंने उनका लिहाज़ किया, कुछ बोला नहीं ; पर अपना मुँह मैंने इस तरह और इतनी देर तक बिचकाया कि उनकी चरती हुई अक़्ल भी ठिकाने लौट आयी। बात फेर कर वे चलते बने।

अब तुमसे कहना यह है कि भाई साहब अगर इस पर भी न मानें और तुम्हें विदा कराने वहाँ पहुँच ही जायँ तो तुम जाना मत। हीला करना, हल्ला करना, सत्याग्रह करना, फ़ौजदारी करना, पर जाना हरगिज़ नहीं। जावगी तो मैं जी-जानसे नाराज़ हो जाऊँगा।

यह ख़त तो यों ही काफ़ी लम्बा हो गया। मुझे अभी अपना विरह निवेदन करना था, अपने प्रेमका पचड़ा गाना था, तुम्हारे रूप और गुणकी प्रशंसामें सैकड़ों बातें लिखनी थीं। पर यह प्रसङ्ग छेड़ूँगा तो अपनी उस नयी विपदाका हाल न लिख सकूँगा जो इस समय अकारण मेरे ऊपर आ पड़ी है।

मेरे एक प्रोफ़ेसर पंजाब-निवासी हैं, वहाँकी मार-काटसे भाग कर अब यहाँ आ बसे हैं। नौजवान आदमी हैं, मुझसे थोड़े ही बड़े होंगे। गत वर्ष उन्होंने प्रयागमें अपनी शादी की। इधर उनकी बीबी जब मायके चली गयी तब प्रश्न यह पैदा हुआ कि उसके साथ पत्र-व्यवहार कैसे हो। प्रोफ़ेसर साहब पंजाबी होनेके नाते हिन्दी पढ़े नहीं थे, और बीबी केवल हिन्दी जानती है। ऐसी अवस्थामें पत्रों द्वारा प्रेमका आदान-प्रदान कैसे हो। प्रोफ़ेसर साहबने हिन्दीकी कुछ रीडरें तो पढ़ डालीं पर रीडरोंमें प्राणप्यारियोंको पत्र

लिखना सिखाया नहीं जाता। अन्तमें वे मेरी शरण आये। मुझसे पूछने लगे कि स्त्रीको हिन्दीके पत्रोंमें आरम्भ और अन्तमें क्या लिखा जाता है। वे कोई चुहचुहाती-सी चीज़ चाहते थे, साधारण प्यारीसे उनका काम न चलता। अतः मैंने बताया कि ऊपर लिखिये—

मेरे प्राणोंकी रानी

और नीचे लिखिये—

तुम्हारे प्रेमका प्यासा

यह उन्हें पसन्द भी आ गया; पर ख़त लिखते समय उन्होंने घपला कर दिया। ऊपर लिखा—

मेरे प्रेमोंकी रानी

और नीचे लिखा—

तुम्हारे प्राणका प्यासा

बीबीको यह ख़त मिला तो वह पढ़ कर भड़क उठी, और अपने जवाबमें उसने प्रोफ़ेसर महोदयको

ऐसा लताड़ा कि वे भी मान गये। पर अब वे मुझसे बिगड़ बैठे हैं, कहते हैं कि तुम्हींने तो इस तरह लिखना बताया था, तुम्हारी ही वजहसे मुझे इतनी फटकार सुननी पड़ी। यही नहीं, धमका भी रहे हैं कि तुमसे इम्तेहानमें समझ लूँगा। बड़ी मुसीबत है। होम करते हाथ जला।

एक तो यह सब परेशानी, ऊपरसे तुम्हारी याद और भी जान मारती है। अभी बीस-बाइस रोज़ और इसी पिंजड़ेमें फटफटाना है; तब कहीं इन आँखोंके भाग जगेंगे और तुम्हें देख पाऊँगा। तुम्हारी ठुड्डीपर एक तिल है, आज रह-रह कर वही चित्तपर चढ़ रहा है।

तुम्हारा

• • • • • • •

—२—

प्यारे !

पहले तो अपनी आदतके अनुसार मैं आपको एक झिड़की सुनाऊँगी। पूरे ग्यारह दिनके बाद आपने पत्र लिखा है। कैसी पराकाष्ठा है प्रेमकी ! प्रेम-प्रीतिके बिरवा, जो आप यहाँ लगा गये हैं, उसके सींचनकी सुधि इसी तरह लिया करियेगा न ? ख़ैर इस बार तो मैं क्षमा कर देती हूँ, पर फिर अगर ऐसा हुआ तो बस यही समझिये कि मैं आसमान सरपर उठा लूँगी।

और आपने यह कैसे समझा कि २५ ता० को भैया मुझे लिवाने आयें तो मैं चली जाऊँगी। मैंने भाभीको साफ़-साफ़ लिख दिया है कि २७ ता० को आप आ रहे हैं, इस लिए अभी मैं नहीं आऊँगी। यह लिखना जो बेहयाई समझें, समझा करें; गदहोंको बुद्धि बाँटना मेरा काम नहीं है। अपने पतिसे मिलनेकी इच्छा रखना अगर पाप है तब तो स्त्री होना ही पाप है। ऐसे समय

मैं क्यों चली जाऊँ जब आप चार महीने बाद घर आ रहे हैं। यह तो बड़ा अन्याय होगा आपके साथ; और खुद अपने साथ भी। लाज मेरा आभूषण है, मैं उसे अपना रोग नहीं बना सकती।

भाभीको मेरा ख़त जब मिलेगा और वे घरवालोंसे जब कहेंगी कि लल्लीको आना अभी मंज़ूर नहीं है उस समय सचमुच एक हलका-सा तहलका मच जायगा। कुछ लोगोंको तो कलिकाल प्रत्यक्ष दिखायी पड़ने लगेगा; कहेंगे कि ससुराल जाते देर नहीं कि दुलहेका ऐसा चसका लग गया। पर आपही सोचिये, कोई इन बातोंका कहाँ तक ख़याल करे। मैं सौ की सीधी एक जानती हूँ कि जो हमारे हितू हैं वे आपका-मेरा प्रेम देख कर प्रसन्न होंगे; और जो हमारे हितू नहीं हैं वे जहन्नुममें जायँ, उनकी मैं कहाँ तक चलाऊँ।

अच्छा सुनिये, आपको एक ऐसी घटना सुनाऊँ जिसे सुन कर आप घंटों हँसें। आप बनवारीको जानते हैं न ?

अरे वही, लाला रामलाल कन्ट्राक्टरका लड़का । चार-पाँच मकान आगे जिसका मकान है। मैं तो उसे निरा छोकरा समझती थी, लेकिन परसों मालूम हुआ कि आप मेरे ऊपर अपना दिल निछावर कर चुके थे।

सदाकी तरह मैं परसों शामको भी टहलनेके लिए छतपर गयी । यह तो मैंने देख रखा था कि इधर बराबर जब मैं अपनी छतपर जाती वह भी अपनी छतपर आ खड़ा होता । पर आज वह पतंग उड़ा रहा था। उसका पतंग ठीक मेरी छतके ऊपर मँडरा रहा था—कुछ इस तरहसे कि जैसे उड़ाने वाला उसे मेरी छतपर ही गिराना चाहता हो। यही हुआ भी। पतंग उड़ते-उड़ते मेरी छतपर आ गिरा । मैंने देखा कि बनवारी उसे उठाने की कोशिश नहीं कर रहा है। मुझे बड़ा अचरज हुआ। मैं पतंगके पास गयी । क्या देखती हूँ कि पतंगके एक कोनेपर सूतसे बँधा कागजका एक पुरजा लटक रहा है । उसे खोल कर मैंने देखा तो उस पर यह कविता लिखी मिली—

—१—

तुम्हें देख यह हृदय हमारा
करता धुक-धुक-धुक-धुक ।
या फिर रुकनेसा हो जाता
चलता ऐसा रुक-रुक ।।

—२—

भूल गया अपनेको लेकिन
तुमको भूल सकूं न ।
गली-गली गलतान बना हूँ
किन्तु करूँ मैं चूं न ।।

—३—

हो तुम रूप-सुधाको सरिता
मैं चाहूँ दो चुल्लू ।
मुझे समझ लो जी चाहे
अव्वल नम्बरका उल्लू ।।

—४—

प्रेम निरा पागलपन मेरा
पग-पगपर है अंडस ।
चूक परै चट चौतरफासे
होने लगै कुटम्मस ।।

—५—

पलक बिछा दूं पथमें तेरे
पायल चूमू झुक-झुक ।
छिपा छिपकिलीसा छप्परमें
देखूं कब तक लुक-लुक ।।

देखा आपने ? कैसी बहारदार कविता है ! एक बार तो मैं ख़ूब हँसी । पर हँसते-ही-हँसते मुझे क्रोध भी आने लगा। क्रोध इस बातपर नहीं कि वह मेरे रूपपर मुग्ध क्यों हुआ। भला इसमें उस ग़रीबका क्या क़सूर था। अपनी आँखोंको वह क्या करे ! भगवान अच्छा रूप इस शर्तपर देता है कि इसपर मुग्ध होनेका अधिकार सब आँखवालोंको होगा । रूप अपना असर न छोड़े तो देखनेवालोंका क्या अपराध !

क्रोध मुझे इस बातपर आ रहा था कि उसे सफलताकी आशा करनेका साहस कैसे हुआ। उसने यह समझनेकी ढिठाई क्यों की कि मेरे ऊपर उसकी बातोंका, उसकी कविताका, प्रभाव पड़ेगा ।

लेकिन तभी मुझे उसके ऊपर कुछ दया भी आने लगी। स्त्रीका हृदय भी कैसे अनमेल आवेशोंका अखाड़ा है ; पहले हँसी——तब क्रोध——फिर दया। उसकी कुचेष्टामें मुझे पाप कम और मूर्खता अधिक दिखायी पड़ी। मूर्खता दयनीय है, दण्डनीय नहीं।

पतंग अब भी छतपर पड़ा था। बनवारी उसकी डोर पकड़े, चुपचाप अपनी छतपर खड़ा मेरे उत्तरकी प्रतीक्षा कर रहा था।

मेरी फाउन्टेन-पेन संयोगसे मेरे पास ही थी।

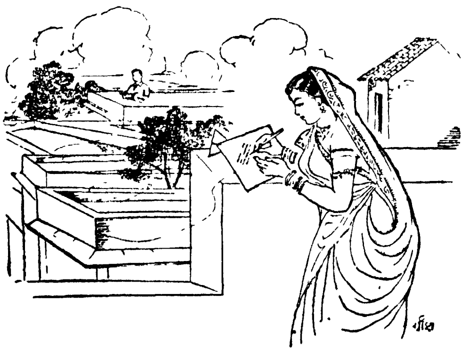

मैंने पतङ्गपर ही अपना उत्तर लिख दिया। उत्तर

लिख कर मैंने पतङ्गको उड़ा दिया, बनवारी उसे खींच ले गया।

आपके पेटमें अब चूहे कूद रहे होंगे—यह जाननेके लिए कि मैंने उसे क्या उत्तर दिया। सुनिये, आपने पत्र सुना, अब उत्तर भी सुन लीजिये। बहुत छोटा उत्तर था—

बाला हूँ सरला सुन्दर हूँ
पर हूँ हट्टी - कट्टी।
होश संभाल—नहीं तो
तेरा सिर औ मेरी चट्टी।।

उत्तर पढ़ते ही बनवारी छतसे उतर गया। कल शामको वह छतपर नहीं आया। आज भी नहीं आया। चलिये साँप मरा, लाठी भी न टूटी। मुझे विश्वास है कि मेरे उत्तरसे उसके आत्म-सम्मानको अमरम्मतीय क्षति पहुँची है। अमरम्मतीय लिखना यदि ग़लत है तो मेरी बला से।

तो आप २७ ता० को ज़रूर आ जायँगे न ? अगर न आये तो ऐसा गाल फुलाऊँगी कि आप भी याद करेंगे। ऐसे समय से चलिये कि शाम तक यहाँ पहुँच जाइये। रात दो बजेकी गाड़ीसे पहुँचना कोई भलमनसी है !

हाँ, आपकी प्रार्थना है कि मैं अपनी माँग बग़लसे निकाला करूँ। मैं इसपर विचार करूँगी। अभी कुछ वादा नहीं करती हूँ। ज़्यादा गिड़गिड़ाइयेगा तो देखा जायगा।

दासी

....

शीघ्र ही छप रहा है

महाकवि चच्चा

आर्यमित्र (आगरा)—हास्यरसके सिद्ध-हस्त लेखक...... खूब ख्याति प्राप्त की......ललित लेखनीकी करामात... सुन्दर कथानक......हास्यरसकी नदी प्रवाहित की है। पढ़ते-पढ़ते जी नहीं भरता। एक बार हाथमें लेकर पुस्तकको बिना समाप्त किये रखना कठिन हो जाता है......उपदेशकी कड़ी क्यूनैनको मजाककी मिश्रीमें मिलाकर पाठकके कण्ठकूपमें उतार देना और सबका काम नहीं है...... उत्कृष्ट विनोदसे भरी......भाषा विशुद्ध ओजस्विनी......पुस्तकको अवश्य पढ़ें......सर्वथा आदरणीय......

सरस्वती (प्रयाग)—सुन्दर रचनासे हिन्दीके हास्य विभागकी उत्तम ढंगसे गौरव-वृद्धि की......हास्यरसका परिपाक विलक्षण ढङ्ग से किया . स्वाभाविकताके आ जानेसे हास्यकी सुकुमारता बढ़ गई ......साहित्यिक पुटोंसे गम्भीरता भी गहन होती गई......साहित्यिक दृष्टिसे सर्वथा अभिनन्दनीय......इस सुन्दर रचनाका संग्रह कर अनूठे चरितका अवश्य रसास्वादन करना चाहिये......

जागरण (काशी)—शिष्ट विनोदके कितने कुशल...... विनोद साहित्यको बहुत ऊँचा उठा दिया......कल्पनाकी मौलिकता बड़े ऊँचे दर्जेकी .....शतमुखसे बधाई। चच्चाकी सूक्तियाँ हिन्दी साहित्य-की निधि..... चच्चाके एक-एक कवित्तपर लाखों न्यौछावर...... समाजका कोई ऐसा बिरला ही अंग होगा जो चच्चाके सर्वव्यापक नेत्रोंसे बचा हो......अन्नपूर्णानन्द जी जाहिरमें बड़े ही गम्भीर भारी-भरकम आदमी हैं पर उनके पोर-पोरमें हास्य भरा हुआ है......यह वह चीज

है जिसे मना करने पर भी लोग लेते हैं और किसीको एक घड़ीके लिये भी माँगे नहीं देते।

माधुरी (लखनऊ)—हमें हर्षके साथ कहते हुए गर्व होता है कि श्री अन्नपूर्णानन्द जीके द्वारा यह कमी पूर्ण हो गई . . . न जाने कितनी प्रसन्नता हुई .....जो आनन्द हुआ वह अनुभव करनेकी ही चीज है... शुद्ध साहित्यिक हास्य मिलता है . विनोदशील हास्यके आवेग-प्रवेगोंसे आन्दोलित .....हिन्दीके सर्व श्रेष्ठ हास्य-लेखक हो गये। ऐसी सुन्दर पुस्तक लिखनेके लिये उन्हें बधाई देते हैं .....इस सूने अंशकी पूर्ति करनेके लिये उनका अभिनन्दन करते हैं।

विश्वमित्र (कलकत्ता)– हास्यरसकी खान...... सिद्धहस्त लेखक......शैली उनकी अपनी......तीखी चुटकियाँ . .. हास्यरसमें शराबोर .....चुस्ती, चटपटापन, सरसता......विशुद्ध साहित्यिकताका बहुत अच्छा निर्वाह .. . उत्कृष्ट कविताके बहुत अच्छे नमूने... . उक्तियाँ इतनी फिट् बैठी हैं कि लेखककी प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता......

श्रीमान बनारसीदास चतुर्वेदी—जो गरमागरम लावा निरन्तर फेंका करते हैं वे हैं श्री अन्नपूर्णानन्द जी......वास्तवमें हिन्दी साहित्यका गौरव बढ़ानेवाला......ऐसी मीठी चुटकियाँ ली गई हैं कि पुस्तक पढ़नेमें बड़ा आनन्द आता है......एक प्रतिभाशाली आदमी हैं......कवि भी बहुत अच्छे......

माननीय श्री श्रीप्रकाश जी—मैं आदर और स्नेहके साथ स्वागत करता हूँ।......शुद्ध और शिक्षाप्रद हास्यरसका आनन्द ......वास्तवमें बड़ी सूक्ष्म और सतर्क दृष्टिसे बड़ी-छोटी सभी घटनाओंको देखा......लेखकने क्या ही सुन्दर शब्द रखे......मीठी चुटकियाँ लीं......मेरे कई घंटे आनन्दित किये......